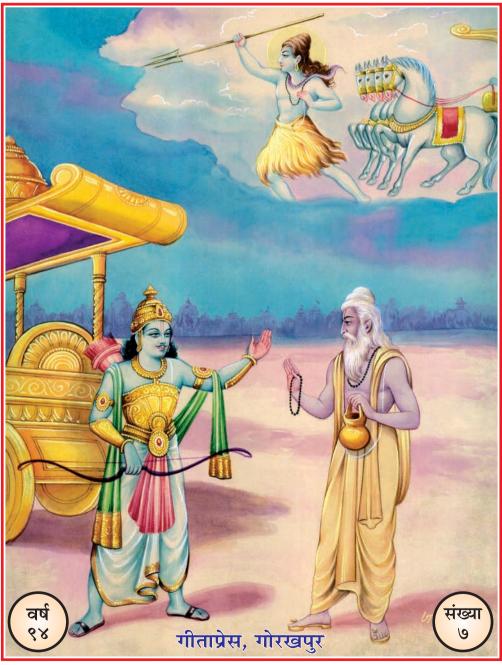
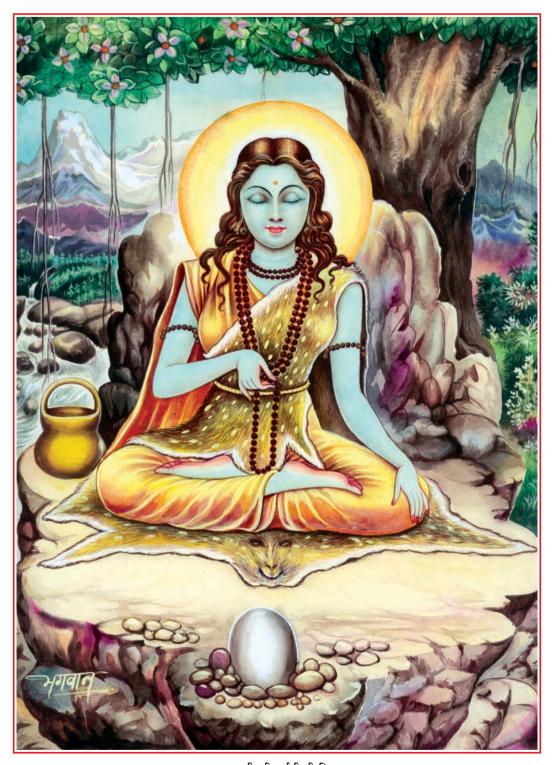
# कल्याण



अर्जुनको भगवान् शिवकी महिमा बताते व्यासजी





पराम्बा भगवती श्रीपार्वतीकी शिवाराधना

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा। दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव॥

वर्ष १४

(गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, जुलाई २०२० ई०)

पूर्ण संख्या ११२४

संख्या

## पार्वतीजीकी शिवाराधना

प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥ उर अति तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सबु भोगू॥ सुकुमार न तनु अनुरागा। बिसरी देह तपहिं नित उपज मनु लागा॥ संबत फल खाए। सागु खाइ गवाँए॥ सहस मूल सत बरष भोजनु बतासा। किए कठिन कछु दिन उपबासा॥ दिन बारि कछु पाती महि सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई॥ बेल परइ परिहरे परना। उमहि नामु पुनि सुखानेउ तब भयउ अपरना ॥ देखि उमहि खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गभीरा॥ तप गगन मनोरथ सुफल तव सुनु गिरिराजकुमारि। परिहरु दुसह कलेस सब अब मिलिहहिं त्रिपुरारि॥

[श्रीरामचरितमानस]

राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।। (संस्करण २,००,०००) कल्याण, सौर श्रावण, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, जुलाई २०२० ई० विषय-सूची पृष्ठ-संख्या पृष्ठ-संख्या विषय विषय १ - पार्वतीजीकी शिवाराधना ...... ३ १६ - 'सेइये सनेहसों बिचित्र चित्रकृट सो'...... ३४ १७- महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र **[ संत-चरित** ] २ – कल्याण ...... ५ ३- शिव-महिमा [ **आवरणचित्र-परिचय** ]......६ (श्रीरामलालजी श्रीवास्तव) ...... ३५ ४- यज्ञोपवीत (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)..७ १८- मानव-जीवनमें सुख और दु:ख (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) .......... ३८ ५ - मान और विवेक १९- लक्ष्मीका वास कहाँ है ? ...... ३९ (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीदयानन्द गिरिजी महाराज) ......... ८ २०- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पृज्य ६- संसारकी सुखमयता (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ... १२ श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे) ...... ४० ७- हनुमान्जीद्वारा रावणकी चिकित्सा करनेका यत्न २१- गोमाताके प्रति कृतज्ञ भाव रखें [ गो-चिन्तन ] ( श्रीअशोकजी कोठारी ) ...... ४१ (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामिकंकरजी उपाध्याय) ......१३ ८- 'बार-बार नहिं पाइये, मनुष-जनमकी मौज' साधकोंके प्रति ] २२- साधनोपयोगी पत्र— .....४३ (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) ....... १६ (१) जीवनको भगवत्परायण बनायें ..... ४३ ९- गोस्वामी तुलसीदासजीकी नाम-निष्ठा (२) सकाम और निष्काम भक्ति ...... ४४ (विद्यावाचस्पति डॉ॰ श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय)......१८ २३- व्रतोत्सव-पर्व [ भाद्रपदमासके व्रत-पर्व] ......४५ १०- राम और नाम ......२० २४- कृपानुभृति ..... ४६ ११- श्रावणमास और उसके व्रत-पर्वोत्सव ......२१ हमारी नैया पार लगी ......४६ १२- राग-द्वेष (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, २५- पढ़ो, समझो और करो .....४७ अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ) ...... २४ (१) एक भारतीय भिखारीका आदर्श चरित्र ...... ४७ १३- महामारी और हमारी स्वास्थ्य-रक्षक सेना (२) खुदा आप-जैसा ही कोई होगा.....४७ (श्रीहनुमानप्रसादजी गोयल) ......२६ (३) श्वेतकुष्ठनाशक गंगाजल .....४८ १४- भगवान् शिवकी शरणागितसे परम कल्याणकी प्राप्ति........ २९ (४) भगवान्की अन्तर्वाणी ..... ४९ २६- मनन करने योग्य ...... ५०

१५- 'अब चित चेति चित्रकृटहि चलु' [ तीर्थ-दर्शन ] (डॉ० श्रीअनुजप्रतापसिंहजी, डी०लिट०) ...... ३०

२- पराम्बा भगवती पार्वतीकी शिवाराधना... ( " ) ... मुख-पृष्ठ ३- अर्जुनको भगवान् शिवकी महिमा बताते व्यासजी (इकरंगा) ...... ६

४- श्रावणमासमें शिव-पूजन ...... ( '' ) ....... २१

चित्र-सूची ५- धृतराष्ट्रको समझाते महात्मा विदुर...... (इकरंगा) ....... २४ १- अर्जुनको भगवान् शिवकी महिमा बताते व्यासजी .. (रंगीन) आवरण-पृष्ठ ६- नन्दबाबाको गौओंकी महिमा बताते

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥ जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ एकवर्षीय शुल्क विराट् जय जगत्पते। गौरीपति रमापते ॥ ₹ २५० वार्षिक US\$ 50 ( 3,000) विदेशमें Air Mail) Us Cheque Collection

करत-करत अभ्यासके जडमित होत सुजान......५०

७- वरदराजपर भगवती सरस्वतीकी कृपा ..... ( 🤫

₹ १२५०

पंचवर्षीय शल्क

£ 09235400242 / 244

पंचवर्षीय US\$ 250 (` 15,000) Charges 6\$ Extra संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित e-mail: kalyan@gitapress.org

सदस्यता-शुल्क —व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें। Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें। अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा book.gitapress.org पर नि:शुल्क पहें।

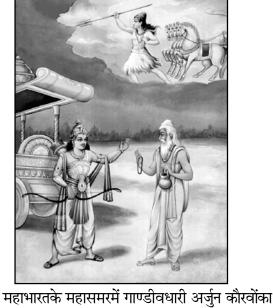
website: gitapress.org

आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक - राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक - डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

संख्या ७ ] कल्याण याद रखो — साधनके तीन स्वरूप होते हैं — धारा अविराम गतिसे चलती है। इसमें विशेषता यह 'अभ्यास', 'रुचि' और 'रति।' मनमें उत्साह, उल्लास, होती है कि इस रतिके साधनमें नित्य-नवीन आनन्दकी अनुभूति होती है। कभी किसी भी स्थितिमें चित्त लगन, तत्परता आदि न होनेपर भी; साधन करते समय चित्तके ऊबने, घबराने या कभी-कभी साधन छोड़नेका अघाता ही नहीं, वरं जितना ही यह साधन बढ़ता है, मन होनेपर भी लाभकी आशासे जो हठपूर्वक साधन उतनी ही साधनकी नयी-नयी लालसा जाग्रत् होती है। कोई भी क्षण ऐसा नहीं जाता, जिसमें साधनका तार किया जाता है, वह अभ्यासका प्राथमिक रूप है। साधन करते–करते जब अभ्यास बढ जाता है, तब ट्टता हो। प्रतिक्षण नया-नया रस प्राप्त होनेसे उत्साह और उल्लास बढ़ते रहते हैं। अन्तमें मनपर पूरी तरहसे उकताहट, घबराहट नहीं होती, साधन अच्छी तरह होने साध्यका एकाधिपत्य हो जाता है, या यों कहिये कि लगता है, परंतु उसमें आनन्दोल्लास नहीं होता—यह समस्त मन साध्यके प्रति सम्पूर्णतया समर्पित होकर उसीका अभ्यासका मध्यम रूप है और जब वही अभ्यास सुदृढ़ होकर आनन्द देने लगता है, जब उसके लिये मनकी बन जाता है, तदनन्तर साध्यकी प्राप्ति हो जाती है। कुछ टान हो जाती है और छोड़नेमें बुरा-सा लगता है, याद रखो-योगकी भाषामें 'अभ्यास' चित्तकी तब उसे उत्तम अभ्यास कहते हैं। इस उत्तम अभ्याससे 'विक्षिप्त' स्थिति है, 'रुचि' 'एकाग्र' स्थिति है और ही साधनमें 'रुचि' उत्पन्न होती है। 'रित' 'निरुद्ध' स्थिति है। या अभ्यास 'धारणा' है, याद रखों—'रुचि' उत्पन्न होनेपर साधनमें स्वाद रुचि 'ध्यान' है और रित 'समाधि' है। ज्ञानकी भाषामें आता है, रसकी अनुभूति होती है, मन चाहता है, बराबर अभ्यास 'पहली भूमिका' है, रुचि 'दूसरी' और 'रित' साधन चलता रहे और उससे सुन्दर रस मिलता रहे। जैसे 'तीसरी भूमिका' है, जिसके अन्तमें वस्तृतत्त्वकी प्राप्ति भोजनमें रुचि होनेपर भोज्यपदार्थ स्वादिष्ट लगते हैं, हो जाती है। भक्तिकी भाषामें अभ्यास 'वैधी भक्ति' है, उनके खानेको मन चलता है, वैसे ही इसमें साधनपर मन रुचि 'साधनभक्ति' है और रित 'प्रेमाभक्ति' है, जो चलता है। पर जैसे पेट भर जानेपर कुछ समयके लिये भगवानुको प्रेमास्पदरूपसे प्राप्त करा देती है। रुचि मिट जाती है, वैसे ही इस क्षेत्रमें भी साधन करनेमें याद रखो — साधकका जिस मार्गमें विश्वास हो, रसानुभूति होनेपर भी कभी-कभी मन अघाया हुआ-सा जिस मार्गमें उसे सुविधा प्रतीत होती हो, निर्देशकने जो मार्ग बतलाया हो, उसको उसीपर श्रद्धाके साथ धैर्य दीखता है, और साधनका प्रवाह रुक-सा जाता है। पर इस प्रकार रुचिका साधन करते-करते अन्तमें साधनमें धारण करके चलना चाहिये। अभ्यास करते-करते वह अनुराग पैदा हो जाता है। यह अनुराग ही 'रित का रूप अपने-आप ही अभ्यासकी परिपक्वता होनेपर 'रुचि' धारण करता है। और 'रित'के स्तरपर पहुँच जायगा और तब वह याद रखो - जब साधनमें 'रित' हो जाती है, अपनेको साध्यके समीप जानकर परम प्रसन्न होगा; तब फिर कभी उसके रुकनेका प्रश्न ही नहीं रह जाता। परंतु जो साधक क्षण-क्षणमें मार्ग-परिवर्तन करेगा, फिर तो जैसे गंगाकी धारा सदा-सर्वदा अविच्छिन उसका तो अभ्यास ही सिद्ध होना कठिन हो जायगा। रूपसे समुद्रकी ओर बहती रहती है, वैसे ही साधनकी 'रुचि' और 'रित' की बात तो अलग रही। **'शिव**'

आवरणचित्र-परिचय

## शिव-महिमा विनाश दूसरा कौन कर सकता था! तुमने उन्हीं



अर्जुनके बाणोंसे बड़े-बड़े महारथी तथा विशाल सेना मारी जाती थी। द्रोणाचार्यकी मृत्युके पश्चात् कौरव-सेना भाग खड़ी हुई। इसी बीच अचानक महर्षि वेदव्यासजी स्वेच्छासे घूमते हुए अर्जुनके पास आ गये।

उन्हें देखकर जिज्ञासावश अर्जुनने उनसे पूछा—'महर्षे!

जब मैं अपने बाणोंसे शत्रुसेनाका संहार कर रहा था, उस

समय मैंने देखा कि एक तेजस्वी महापुरुष हाथमें त्रिशूल

संहार कर रहे थे। जिधर श्रीकृष्ण रथको घुमाते थे, उधर

हैं कि मैंने ही उन्हें मारा और भगाया है। भगवन्! मुझे बताइये, वे महापुरुष कौन थे?' कमण्डल् और माला धारण किये हुए महर्षि वेदव्यासने शान्तभावसे उत्तर दिया—'वीरवर! प्रजापतियोंमें प्रथम, तेज:स्वरूप, अन्तर्यामी तथा सर्वसमर्थ भगवान

नये-नये त्रिशुल प्रकट होकर शत्रुओंपर गिरते थे। उन्होंने ही समस्त शत्रुओंको मार भगाया है। किंतु लोग समझते शंकरके अतिरिक्त उस रोमांचकारी घोर संग्राममें अश्वत्थामा,

कर्ण और कृपाचार्य आदिके रहते हुए कौरवसेनाका महेश्वर ही हैं। अर्जुन। यह है महादेवजीकी महिमा! Hinduism Discord Server https://dsc<u>.gg/dharma</u> MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

भुवनेश्वरका दर्शन किया है। उनके मस्तकपर जटाजूट तथा शरीरपर वल्कल वस्त्र शोभा देता है। भगवान् भव भयानक होकर भी चन्द्रमाको मुकुटरूपसे धारण करते हैं। साक्षात् भगवान् शंकर ही वे तेजस्वी महापुरुष हैं, जो कृपा करके तुम्हारे आगे-आगे चला करते हैं।' एक बार ब्रह्माजीसे वरदान प्राप्त करके तीन असुर—तारकाक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली आकाशमें विमानके रूपमें नगर बसाकर रहने लगे। घमण्डमें फूलकर ये भयंकर दैत्य तीनों लोकोंको कष्ट पहुँचाने लगे। देवराज इन्द्रादि उनका नाश करनेमें सफल न हो पाये। देवताओंकी प्रार्थनापर भगवान् शंकरने उन तीनों पुरोंको भस्म कर दिया। वीरवर अर्जुन! उनका भोलापन सुनो—'जिस समय दैत्योंके नगरोंको महादेवजी भस्म कर रहे थे, उस समय पार्वतीजी भी कौतूहलवश देखनेके लिये वहाँ आयीं। उनकी गोदमें एक बालक था। वे देवताओंसे पूछने लगीं—'पहचानो, ये कौन हैं ?' इस प्रश्नसे इन्द्रके हृदयमें असूयाकी आग जल उठी और उन्होंने जैसे ही उस बालकपर वज्रका प्रहार करना चाहा, तत्क्षण उस बालकने

हँसकर उन्हें स्तम्भित कर दिया। उनकी वज्रसहित उठी

हुई बाँह ज्यों-की-त्यों रह गयी। अब क्या था, बाँह उसी

तरह ऊपर उठाये हुए इन्द्र दौड़ने लगे। महान् कष्टसे

लिये हमारे रथके आगे-आगे चल रहे थे। सूर्यके समान पीड़ित होकर वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीको दया तेजस्वी उन महापुरुषका पैर जमीनपर नहीं पडता था। आ गयी। वे इन्द्रको लेकर शंकरजीके पास पहुँचे। त्रिशूलका प्रहार करते हुए भी वे उसे हाथसे कभी नहीं ब्रह्माजी शंकरजीको प्रणाम करके बोले—'भगवन्! आप छोडते थे। उनके तेजसे उस एक ही त्रिश्लसे हजारों ही विश्वका सहारा तथा सबको शरण देनेवाले हैं। भूत और भविष्यके स्वामी जगदीश्वर! ये इन्द्र आपके क्रोधसे पीड़ित हैं, इनपर कृपा कीजिये।' सर्वात्मा महेश्वर प्रसन्न हो गये। देवताओंपर कृपा करनेके लिये ठठाकर हँस पडे। सबने जान लिया कि पार्वतीजीकी गोदमें चराचर जगत्के स्वामी भगवान् शंकरजी ही थे। वे सभी मनुष्योंका कल्याण चाहते हैं, इसलिये उन्हें शिव कहते हैं। वेद, वेदांग, पुराण तथा अध्यात्मशास्त्रोंमें जो परम रहस्य है, वह भगवान् संख्या ७ ] यजोपवीत यज्ञोपवीत (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) यज्ञ और उपवीत—इन दो शब्दोंसे यज्ञोपवीत शब्द करनेका तात्पर्य भी सर्वमय—सबमें व्याप्त परम ब्रह्मको बना है। वैदिक यज्ञोंको करनेका अधिकार यज्ञोपवीत-प्राप्त करना ही है। संस्कारसे प्राप्त होता है। यज्ञोपवीत इस बातका सूचक शास्त्रकारोंने दाहिने कानमें आदित्य, वसु, रुद्र, है कि यह द्विजाति है, इसे वेदाध्ययन एवं वैदिक कर्मका वायु, तथा अग्नि आदि देवताओंका निवास माना है। अधिकार प्राप्त है। द्विजाति पुरुष वैदिक कर्मोंमें अधिकार-आदित्या वसवो रुद्रा वायुरग्निश्च धर्मराट्। प्राप्तिके लिये उपनयन-संस्कारद्वारा यज्ञोपवीत धारण विप्रस्य दक्षिणे कर्णे नित्यं तिष्ठन्ति देवताः॥ करता है। इसीलिये यज्ञोपवीतका एक नाम ब्रह्मसूत्र इसलिये शौचादिके समय जबिक हम अपवित्र अर्थात् वेद (ब्रह्म)-के अधिकारका सूचक है। दशामें होते हैं, वेदके पवित्र अधिकारके प्रतीक यज्ञोपवीतको यज्ञोपवीत वेदाधिकारसूचक है। वेदका मुख्य मन्त्र दाहिने कानपर चढ़ा लेते हैं। उस समय उसकी है—वेदमाता गायत्री। गायत्रीमें २४ अक्षर हैं। यह मन्त्र पवित्रताकी रक्षा उस कर्णमें स्थित देवताओंद्वारा होती चारों वेदोंमें है। चारों वेदोंके गायत्री-मन्त्रोंकी कुल है-यही इसका भाव है। मनुष्यका हृदय वाम भागमें अक्षर-संख्या ९६ हुई। इससे यज्ञोपवीत-सूत्र ९६ अंगुलका है-यज्ञोपवीतका उद्देश्य हम हृदयसे समझते-मानते हैं होता है। सामवेदके छान्दोग्य-परिशिष्टके अनुसार तत्त्व और मानेंगे, यह सूचित करता हुआ यज्ञोपवीत वाम २५, गुण ३, तिथि १५, वार ७, नक्षत्र २७, वेद ४, काल कन्धेसे होता हुआ, हृदयपर होकर दाहिने आता है। ३, मास १२—इन सबके योग ९६ अंगुलको यज्ञोपवीत-यज्ञोपवीत वेदका सपवित्र प्रतीक है—अत: अपवित्र सूत्रका परिमाण रखकर उसे भुवनात्मक प्रतीक माना दशामें उसकी पवित्रता न रखी गयी हो, वह कर्णस्थित गया है। उपनीत होनेवाले व्यक्तिको ९६ सहस्र वैदिक देवताओंको रक्षाके लिये न दिया गया हो तो अपवित्र ऋचाओंका अधिकार प्राप्त है-यह भी यज्ञोपवीतका माना जाता है, अत: बदला जाता है। यज्ञोपवीत धारण करके जो संध्या, गायत्री-जप सूत्र ९६ अंगुल होनेमें प्रधान हेतु है। यज्ञोपवीतमें तीन सूत्र त्रिगुणित किये गये होते हैं। नहीं करता—वह अनुचित करता है। परंतु जो यज्ञोपवीत धारण ही नहीं करता, उसे तो वैदिक कर्मींके करनेका त्रिगुणसे निर्मित जगत्में वैदिक त्रयीके आधारसे ऋणत्रय अधिकार ही नहीं है। वह इन्हें करता है तो अनिधकार (देव-ऋण, ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण)-से मुक्त होना हमारा कर्तव्य है—यह त्रिगुणित तीनों सूत्र बतलाते हैं। कार्यका दोषी होता है। इसलिये द्विजातिको यज्ञोपवीत इस प्रकार उपर्युक्त विधिसे निर्मित यज्ञोपवीत नौ धारण करना ही चाहिये। तन्तुवाला बन जाता है। इन नौ तन्तुओंमें ॐकार, अग्नि, गुणोंका धारण तथा अवगुणोंका त्याग तो सभीके लिये इष्ट है। जो द्विजाति हैं, उनके लिये भी तथा जो अनन्त, चन्द्र, पितृगण, प्रजा, वायु, सूर्य, सर्वदेवका निवास है। इनसे उन देवताओंके गुण आते हैं। द्विजाति नहीं हैं उनके लिये भी। यज्ञोपवीतमें चार ग्रन्थि नहीं होती। उसमें अपने गुणाधानके लिये तामसी पदार्थींका त्याग करना प्रवरके अनुसार १, २, ३ या ४ गाँठ होनी चाहिये। यह उत्तम बात है। जहाँतक हो सके राजस पदार्थींका भी प्रवरकी सूचक है। इन गाँठोंसे नीचे पहले ब्रह्मग्रन्थि त्याग करना चाहिये। इससे सात्त्विक गुणोंकी अभिवृद्धिमें होती है, जो सूचित करती है कि वेदाधिकार प्राप्त सहायता मिलती है।

मान और विवेक ( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीदयानन्द गिरिजी महाराज ) एक भारवि नामवाले कवि थे। उनके पिताजी भी कलका छोकरा है और अभी कुछ नहीं जानता है।' इस राजदरबारमें बड़े मान-प्रतिष्ठावाले कवि थे। उस समय तरह कहनेके पीछे उसका पिता चाहता था कि उसके कन्नौज राज्यका राजा बड़ा धर्मात्मा था। उसकी सभामें अन्दर तेज पैदा हो, जिससे वह जोशमें आकर अपनी बहुत कवि रहते थे। जो विद्वान् कवि होता था, उसको विद्याको अधिक बढानेका यत्न करे। पिताकी बात सुनकर राजा पुरस्कार भी देता था। राजा उनको जीवन-यापनके वह और मन लगाकर अपना अध्ययन-मनन करता रहता। लिये खर्च भी देता और उनकी शिक्षाएँ सुनता था। जब वे इस प्रकार एक-दो साल और बीत गये। कवि राजदरबारमें आते, तो राजा आदरके रूपमें उनको एक दिन बड़ा भारी कवि-दरबार हुआ। अनेक राजा भी उस दरबारमें उपस्थित थे। उस दरबारमें सबसे एक पानका बीड़ा भी देता था। उन कवियोंमें एक पण्डित था; जो आप तो विद्वान् था ही, परंतु उसका लड़का उससे बड़ा किव वही लड़का माना गया और उसको बड़ा आदर-मान मिला। इस कवि-दरबारमें राजाने पुरस्कार भी अच्छा कवि निकला। यद्यपि उस लड्केकी आयु अभी १७-१८ वर्षकी थी, परंतु उसकी कविता बड़ी मधुर, भी रखा था कि जो आजके दरबारमें बड़ा कवि निकलेगा, मार्मिक और शिक्षा देनेवाली होती थी। जब वह राजदरबारमें उसको वह धन भी देगा। राजा ने पुरस्कारके रूपमें उसे अपनी कविता सुनाता, तो उसकी उम्रको देखते हुए राजा महल-जैसा एक नया घर और प्रभूत मात्रामें धन भी खुश हो करके उसका स्वागत दो पानके बीड़े देकर दिया। उस दिन उस लडकेने सोचा कि आज मैं घर जाकर पिताजीको बताऊँगा कि यह मेरा मान है कि आपका मान करता। बहुतसे पण्डित यह देखकर जलते; परंतु उसके पिताजीके मनमें बड़ी ख़ुशी होती और साथमें चिन्ता भी है ? इस प्रकार उसके मनमें अहंकार आ गया। होती कि यह अभी १७-१८ सालका बच्चा है; इसके वह घरमें गया और ख़ुशी-ख़ुशी अपनी माँके सामने गुरुकुलके २५ वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं। इतने बड़े मानसे जाकर अपना मान दिखाने लगा और बोला—पिताजी रोज इसकी बुद्धि ठिकाने न रहे और यह अपने अन्दर अभिमान मुझे मूर्ख कहते हैं और मेरा अपमान करते हैं। ऐसा मालूम कर ले तो आगे इसकी उन्नति रुक जायगी। सारे दर्शनशास्त्र पडता है कि मेरे पिताजीको भी मेरा मान सहन नहीं होता। अभी इसे जानने हैं। आध्यात्मिक विद्या भी सारी जाननी देखो, मैं आज कितना मान लेकर आया हूँ ? उसकी माँ है। इस बच्चेने खाली थोड़ा-सा संस्कृतका अध्ययन कर कहने लगी कि 'कोई बात नहीं बेटा, वे तेरे पिताजी हैं लिया और थोड़ा साहित्य जान लिया। उसके अनुसार और तेरे भलेके लिये ही कहते हैं।' परंतु उसकी समझमें बुद्धि अच्छी थी, कवि बन गया। यदि यह इस मान-वह बात नहीं बैठी। देखो, यह मानका बन्धन, मनुष्यको आदरके चक्करमें रह गया तो इसकी उन्नति कैसे होगी? कितना अन्धा बना देता है तथा बुद्धिमान्को भी बुद्धिहीन जिस समय उसका लड़का कहींसे ज्यादा मान-कर देता है। अन्तमें जिस समय उसका पिता घरपर आया. आदर पाकर फूला-फूला घर आकर अपनी माँसे अपनी तो उसको वह सुनाने लगा कि देखो, पिताजी! आज यह बात सुनाने लगता तो पासमें बैठा हुआ उसका पिता उसमें मैं कितना आदर-मान पाया हूँ ? यह क्या बच्चा समझकर अभिमान न आ जाय इस उद्देश्यसे कहता, 'यह लडका मुफ्तका ही राजाने मान दिया है? बडा मुर्ख है। इसको यह समझ ही नहीं है कि सभामें मान इस प्रकार लडकेके वचन सुनकर उसके पिताने तो मेरा है। मेरा लड़का होनेसे दूसरे तेरा मान करते हैं, तू पहलेसे और भी अधिक भला-बुरा सुना दिया और कहा कि 'तू मूर्खका मूर्ख ही रहा। अरे! तेरी बुद्धि भ्रष्ट करनेके अपना ही समझे बैठा है। तू विद्या की उन्नति कर और इस मानके चक्कर में न रह। थोड़ी विद्या तेरी अवश्य है, परंतु लिये ही यह सारा किया गया है। तू समझता नहीं है, मान

उत्तम मानके योग्य अभी नहीं है। तेरा अभी मान क्या है ?

किसका है ? तेरा मान कुछ नहीं है, तेरे कुल और बाप-

संख्या ७] मान औ	र विवेक ९
**************************************	**************************************
दादोंका मान राजदरबारमें है, जो तुझे मिल रहा है। तू क्यों	सँभाला जाता है और कैसे उच्च स्थानतक पहुँचाया
अभिमानी हो गया? तेरेको कुछ भी आता-जाता नहीं	जाता है। थोड़े ही सालमें वह पूर्ण हो जायगा। फिर
है।' जैसे-जैसे जितना वह मानसे फूला हुआ था, पिताने	इसकी सबसे ज्यादा खुशी हम दोनोंको ही होगी।' जब
उतने ही मनसे उसे निन्दारूपी डंडे मारे तो उसके मनमें	पिताने ऐसा कहा, तो वही लड़का ऊपर बैठा सुन रहा
चिढ़ हो गयी और समझा कि मेरा बाप मेरा मान सहन	था। तब तो उसको ऐसा लगा कि जैसे किसीने उसीके
नहीं कर सका। उसके मनमें ऐसा विचार आया कि यह	ऊपर पत्थर गिरा दिया। उसने सोचा कि मेरा पिता मेरा
पिता (बाप) मेरा बैरी है, मेरा हितकर नहीं है। जैसे	इतना भला सोच रहा है और मैं उसको मारनेके लिये
दूसरोंको मेरा मान बुरा लगता है, उसी प्रकार मेरे पिताको	चल पड़ा। सचमुच मैं मूर्ख ही हूँ, क्योंकि उनके
भी मेरा मान अच्छा नहीं लगता है और सहन करनेमें नहीं	अन्दरके सही भावोंको नहीं समझ सका। इस प्रकारका
आ रहा है। इसको इतना मान तो राजदरबारमें मिला नहीं	भाव उसके मनमें बना कि अब मैं पिताजीके सामने कैसे
और मेरा मान सहन नहीं कर सकता। इस प्रकारकी बुद्धि	प्रकट होऊँ ? वह जाकर अपने पिताजीके चरणोंमें पड़
उसको बन गयी।	गया और कहा कि 'पिताजी! वास्तवमें मूर्खसे भी
जब लड़केको पितासे उचित मात्रामें मान नहीं	महामूर्ख हूँ, आप मुझे दण्ड सुनाओ।' पिताजीने कहा
मिला, तो उसके मनमें आया कि पिताजी नीचे बैठ करके	कि 'अरे बेटा, किस बातका दण्ड सुनाऊँ?' उसने कहा
भोजन करते हैं। मैं छतपर बैठ जाऊँगा। जब पिताजी	कि 'मैंने अपने पिताजीको जानसे मार डाला है।' तब
खाना खानेके लिये इसी छतके रोशनदानके नीचे बैठे	पिताजीने कहा कि 'अरे! तूने कहाँ मार डाला है, मैं
हुए होंगे, उस समय ऊपरसे बड़ा भारी पत्थर इस छतके	तो तेरे सामने जीवित बैठा हूँ।' तब सारी बात उसने
रोशनदानमें–से गिराकर पिताजीको मार दूँगा। देखो,	खोलकर अपने पिताजी को बतायी। पिताजीने फिर
यहाँतक उसका दुष्ट–संकल्प बन गया।	कहा, 'सुन बेटे, जैसा मूर्ख तू पहले था, वैसे ही अब
इस विचारको लेकर वह छुपकर ऊपर जाकर बैठ	तू मूर्खरूपसे सिद्ध भी हो गया। तुझे अभी नहीं पता
गया। उसने ऐसा प्रतीत करवाया कि पिताद्वारा की गयी	कि मौत कितने प्रकारकी होती है। जैसे जीवनसे ज्यादा
निन्दासे क्षुब्ध होकर वह घरसे बाहर रुष्ट होकर कहीं	मानको तुम मानते हो; पितासे बड़ा मानको तुम मानते
निकल गया अर्थात् भाग गया है। उसका पिता, जो	हो, ऐसे मौत भी एक-से-एक बड़ी होती है।' उसने
राजकवि था, राजदरबारसे घरपर आया तो उस लड़केकी	कहा, 'कैसे ?' पिताजीने समझाया कि 'मान जाना सबसे
माताने आते ही कहा कि आपने बेटेकी इतनी निन्दा की है	बड़ी मौत होती है। इसलिये तू अपना अपमान करा ले।'
कि वह आज सुबह ही घरसे चला गया और उसने आज	लड़केने कहा कि मेरा अपमान तो कोई नहीं करता;
भोजनतक नहीं किया।	राजातक मेरा मान करते हैं, मैं अपमान कैसे कराऊँ?
जब उसकी माताने लड़केके घरसे भागनेके बारेमें	पिताने कहा, 'मैं बताता हूँ।''तुम अपनी ससुराल चले
कहा, तो पिताने कहा 'तू भी मूर्ख है, तेरेको भी पता	जाओ। मैं उनको चिट्ठी लिख देता हूँ। तुम वहाँ जाकर
नहीं। वह मेरा बेटा है। मुझे नहीं पता कि उसका भला	कुछ दिन नौकरी करना। जब उनकी नौकरी करेगा, तो
क्या है ? यदि अभीसे वह मानके चक्करमें पड़ गया,	जहाँ तुमको मान मिलता है, वहाँ नौकरीका अपमान
जैसे उसको सब जगहसे मान मिलता है, तो उसकी	मिलेगा। जाओ, पत्र मैं लिख देता हूँ और तुम्हें यह
उन्नति रुक जायगी। तुम जानती हो कि उसके मानमें	ख्याल रखना है कि मैं उनकी (ससुरालवालोंकी)
मैं कितना उछलता हूँ और मुझे कितनी खुशी होती है ?	नौकरी कर रहा हूँ। वहाँ तेरा रोज जो अपमान होगा,
तुझे मेरी खुशीकी कोई खबर नहीं है। तुम भी मूर्ख हो	मान भंग होगा, तो वह मौत बढ़िया है। उससे तेरा
और वह भी मूर्ख है। मैं ही जानता हूँ कि बेटेको कैसे	प्रायश्चित्त होगा। इस मौतसे नहीं, जिसमें तू एक बार

भाग ९४ मरेगा।' उसकी समझमें बात बैठ गयी। उसने कहा, नहीं करना चाहिये, कारण कि अविवेक अर्थात बिना 'देखो, सचमुच मेरे पिताजी बड़े बुद्धिमान् हैं, जो कि सोच-विचारके झटपट प्रकृतिके जोशसे जो काम किया मुझे मरनेसे भी बचा रहे हैं और मेरा पाप भी धो रहे जाता है, वह परम आपत्तियों (आफतों)-का घर होता हैं तथा मुझे शिक्षा भी दे रहे हैं।' है। जो मनुष्य विवेकसे सोच-विचार करके कार्य करता पिताका पत्र लेकर लड़का ससुराल चला गया। है, उसको सारी सम्पत्तियाँ मिलती हैं।' श्लोक तो अपने ढंगका संस्कृतमें है। अविवेकका अर्थ है बिना विचार सस्रालमें जानेके बाद कुछ दिन उसका दामादकी तरह किये। विवेक उसे कहते हैं कि जो वस्तु जैसी है, उसको स्वागत किया गया। बादमें उन्होंने कहा कि 'देखो, हमारे यहाँ बाजरा पकता है। उसकी रखवालीके लिये वैसा समझ लेना, जबिक अविवेकमें जो वस्तु जैसी है चिड़िया उड़ानी पड़ती है। खेतमें मचान हम बाँध देते वैसी तो समझमें आती नहीं तथा कुछ और ही समझमें हैं। अब आप खेतमें जाओ और हमारे खेतोंकी चिडिया आती है। राजाने कहा, 'ठीक है; श्लोक तो बहुत बढिया उडाओ।' पहली नौकरी तो उसको यही दी गयी। वह है।' पढ़कर उसने सोचा कि हम राजा हैं तथा तलवारके कवि तो था ही, इसलिये नौकरी भी करता और अपनी धनी हैं। झटपट कहीं किसीपर क्रोध (गुस्सा) आनेपर तलवार चला देते हैं। इसलिये इस श्लोकको तलवारकी पुस्तक भी लिखता रहा। पासमें और दूसरोंके भी खेत थे। उन खेतवाले लड़कोंको भी कविता सुनाता, जिससे म्यानके शुरूमें रख देते हैं। जब तलवार निकालें तो पहले यह श्लोकका पर्चा गिरे और गिरते ही झटपट हमें सोचनेके उसने उनको इतना लुभा दिया कि वे लडके कहने लगे कि आप हमें यही कविता सुनाते रहा करो, आपके लिये चौकस कर दे कि ठहरो, जरा सोचकर काम करना, खेतोंकी रखवाली तो हम ही कर देंगे।' वह मचानपर कहीं ऐसे ही नहीं दूसरेको मार डालना। बैठा-बैठा कविता रचने एवं पुस्तक लिखनेमें लगा रहता राजाने वह श्लोक तलवारकी म्यानमें रख लिया और उसको पाँच सौ रुपये दे दिये। वह पाँच सौ रुपये था। इस प्रकार होते-होते काफी दिन बीत गये। लेकर घर आ गया और वे रुपये घरवालोंको दे दिये। जब दूसरी फसल आयी, तो उसकी घरवालीके बच्चा होनेवाला था। उसके ससुरालवालोंने कहा कि 'आप उसकी घरवालीने पुत्रको जन्म दिया और उसने अपनी इस खर्चके जिम्मेवार हो और इसके लिये पाँच सौ रुपयोंकी ससुरालवालोंसे कहा कि 'आप अपना सब सामान वगैरह लाकर, जो कुछ बेटेका संस्कार करना है, वह करो।' जरूरत है', 'कहींसे भी पाँच सौ रुपये लाओ', तो लडके उस समय मुसलमानोंका राज्य था। जितने भी ने कहा कि 'कहाँसे लाऊँ ?' तो उन्होंने कहा कि 'यहाँके राजपूत राजा थे, ये सब उनके अधीन थे। कहीं राजकुमारके पास जाओ, सबसे ज्यादा उसीके पास धन है। उसके पास आप अपनी कोई वस्तु गिरवी रख करके काबुलमें लड़ाई हो रही थी, तो दिल्ली दरबारसे आज्ञा मिली कि गुजरात (काठियावाड़)-का राजा भी फौज आवश्यक धन ले आओ।' उसने सोचा कि 'मेरे पास और तो कोई वस्तु नहीं है। परंतु मैं किव हूँ, मैंने एक ग्रन्थ रचा लेकर काबुल पहुँच जाय। राजा सेनाके साथ उस हुआ है, जिसको मैं गिरवी रख देता हूँ। तबतक इस आज्ञाको पाकर युद्धक्षेत्रमें पहुँच गया। राजा चार-पाँच ग्रन्थका प्रचार नहीं करूँगा, जबतक रुपये वापस नहीं दे सालतक उधर ही रहा तथा आ नहीं सका। जब यह दुँगा।' ऐसा विचार करके वह राजाके पास गया और लड़ाईमें गया तो इस राजाका लड़का तीन सालका था। वह चार-पाँच सालमें जवान-जैसा हो गया, कारण कहा कि 'महाराज, मेरे ग्रन्थका यह एक श्लोक आप रख कि राजकुमार तो था ही और उसको खाने-पीनेकी सब लें और इसके आप कृपया मुझे पाँच सौ रुपये दे दीजिये। प्रकारकी मौज थी। परंतु उसकी माताका मोह होनेसे जबतक आपके पाँच सौ रुपये वापस नहीं लौटाऊँगा, वह अपनी माताके साथ ही सोता था। पाँच वर्ष बाद तबतक में इस ग्रन्थका प्रचार नहीं करूँगा।' श्लोकका भविष्यि<del>प्रांडफ्रिती हेवदाव हेिं</del> प्रमासिक्सीय ह<del>िंडिक</del>्ष्वी प्रमासिक्सीय हिंडिक्ष वे प्रमासिक स्पायित स्पायित हिंडिक्स कि स्पायित है स्पायित है कि स्पायित

## संसारकी सुखमयता

िभाग ९४

( नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ) संसार दु:खमय भी है तथा संसार दु:खलेशशून्य भगवानुका सुख-संस्पर्श कराता रहता है। यों नित्य

ब्रह्म-संस्पर्शको प्राप्त पुरुष नित्य ब्रह्म-सुखमें-

सर्वथा आनन्दमय भी है। जहाँ भगवान्की विस्मृति है, जहाँ केवल विषय-भोगोंके प्राप्त करनेकी इच्छा, भगवत्प्रेमानन्दमें निमग्न रहते हुए ही संसारमें भगवान्का

विषय-भोगोंसे सुखकी आशा तथा विषय-भोगोंमें प्रीति कार्य करते रहते हैं। इसके विपरीत बाहरसे जो विषय-भोगोंके त्यागी-

है, वहाँ संसार सर्वथा 'दु:खमय' है और जहाँ संसारकी विषयरूपमें अप्रीति, विषयोंमें सुखबुद्धिका अभाव,

भगवत्प्रीत्यर्थ ही विषय-सेवन, भगवल्लीलाकी पूर्तिके लिये ही भोग-स्वीकार तथा संसारमें सर्वत्र सर्वथा

भगवानुकी सन्निधिका अनुभव है, वहाँ संसार 'परमानन्दमय' है।

वस्तुतः संसार आनन्दमय भगवान्की ही

अभिव्यक्ति है तथा यह भगवान्की ही आनन्दमयी लीला है, इसलिये यह स्वरूपत: आनन्दमय ही है।

दु:ख तो सर्वत्र भगवान्की अनुभूतिके तथा सर्वथा भगवान्की स्मृतिके अभावमें ही है। वस्तुत: सर्वत्र मंगलमय आनन्दमय भगवान्की सत्ता है, मंगलमय

आनन्दमय भगवान्का आनन्द है तथा मंगलमय आनन्दमय भगवान्के सौन्दर्यका प्रसार है। भगवान्के इस मंगलमय आनन्दमय स्वरूपमें जिनकी दृष्टि है,

प्रीति है और प्रतिष्ठा है, उनके लिये संसार आनन्दमय है एवं वे ही संसारमें भगवान्के आनन्दमय स्वरूपका अनुभव करते हैं। कोई भी बाह्य स्थिति न तो उनके

इस आभ्यन्तरिक नित्य आनन्दको हटा सकती है और न किसीको बाह्य स्थिति यह आनन्द प्राप्त ही संसारके विषय-भोगोंमें जिनकी आसक्ति नहीं,

करा सकती है।

कामना नहीं, ममता नहीं तथा भगवान्में जिनकी

रखा है, उनके लिये संसार सदा दु:खरूप ही है। इसके विपरीत, जिनके मनमें भगवान् बसते हैं,

जो नित्य भगवत्सम्पर्कमें रहते हैं, जिनकी अहंता भगवान्की अनुगामितामें परिणत हो चुकी है, जिनकी

सारी ममता भगवान्के चरणकमलोंमें केन्द्रित हो चुकी है, जिनकी आसक्ति भगवान्की स्वरूप-लीला-सम्पत्तिमें समाहित हो गयी है और जिनकी कामना केवल श्रीभगवानुके प्रेमराज्यमें ही विचरण करती है, उनका

प्रत्येक कार्य भगवत्प्रीतिकी प्रेरणासे तथा भगवत्-सिन्निधिकी अनुभूतिमें होता है और उनकी प्रत्येक वस्तु भगवान्के प्रति समर्पित होकर धन्य हो जाती है, वे चाहे बाहरसे त्यागके चिह्न न धारण करते हों, पर वे ही यथार्थ त्यागी हैं। त्यागीको ही शान्ति मिलती

है—'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्' (गीता १२।१२) और जहाँ शान्ति है, वहीं सुख है; अतएव ऐसे पुरुषोंके लिये संसार सर्वथा सुखमय है; क्योंकि वह भगवानुका

लीला-क्षेत्र है और प्राणिमात्रके कल्याणके लिये होनेवाली मधुर लीलासे ओतप्रोत है। ऐसे ही पुरुष संसारमें धन्य हैं। इस दृष्टिसे संसारको आनन्दसे उत्पन्न, आनन्दमें

से दीखते हैं और बाहरी त्यागके चिह्नोंको भी धारण

करते हैं, पर जिनके मनमें विषयासक्ति, विषय-कामना

तथा संसारके प्राणी-पदार्थींमें इन्द्रियसुखार्थ ममता है,

वे दु:खोंसे मुक्त नहीं हो सकते; क्योंकि भगवत्-

विस्मृतिरूप परम दु:खमय संसारको उन्होंने मनमें बसा

आसक्ति, ममता तथा भगवत्-प्राप्ति या प्रीतिकी कामना स्थित और आनन्दमें ही विलीन होनेवाला जानकर

है, वे विषय-भोगोंमें रहते हुए उनके स्पर्शसे अलिप्त रहते हैं और वह विषय-भोग भगवान्की पूजाकी आनन्दस्वरूपका अनुभव करना चाहिये। सामग्री—भगवत्कार्यके साधन बनकर उन्हें नित्य

हनुमान्जीद्वारा रावणकी चिकित्सा करनेका यत्न संख्या ७ ] हनुमान्जीद्वारा रावणकी चिकित्सा करनेका यत्न ( मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामिकंकरजी उपाध्याय ) भगवान् रामने सीधे लंकापर आक्रमण न करके क्या ? पहले हनुमानजीको वहाँ भेजा था। इसका सांकेतिक मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान। तात्पर्य क्या है? श्रीरामचरितमानसमें जहाँपर मानस (4173) '—तुम तमरूप अभिमानका त्याग कर दो।' रोगोंका वर्णन आया है, वहाँ मानस रोगोंके वर्णनके साथ हनुमान्जी इतने उदार हैं कि उसे केवल एक ही वस्तु ही यह भी कहा गया है कि मनके रोगोंको नष्ट छोडनेके लिये कहते हैं। यदि बहुत कुपथ्य करनेवाला करनेवाला वैद्य चाहिये। और वह वैद्य कौन है? रोगी हो और उसको वैद्य अगर सब कुछ छोड़नेके लिये सदगुर बैद बचन बिस्वासा। कहे तो शायद वह एक भी बात न माने। तो चतुर वैद्य 'सद्गुरु ही वह वैद्य है।' हनुमान्जीको रावणके कहता है कि 'अच्छा भाई, भले सब न छोड़ सको, पर पास भेजनेका तात्पर्य यह था कि हनुमान्जी ही वस्तुत: इतना तो छोड़ ही दो। और अभिमानमें भी एक शब्द सद्गुरु हैं। वे शंकरके अवतार हैं। भगवानुका तात्पर्य यह है कि रावण-जैसा रोगी, जोड़ दिया—'तम अभिमान।'चलो, सतोगुणी, रजोगुणी जो अपने रोगके द्वारा स्वयं तो दु:ख पा ही रहा है, पर अभिमानको न भी छोड़ पाओ तो कोई बात नहीं है, पर अपनेसे भी अधिक वह सारे समाजको दु:खमें डाल रहा कम-से-कम तमोगुणी अभिमानको तो छोड़ दो। और है, उसके रोगका निदान हो जाय, भगवान् चेष्टा यह इसका उत्तर रावणकी ओरसे क्या मिला? करते हैं कि रावणके वधकी आवश्यकता न पड़े। तात्पर्य बोला बिहसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी।। यह है—'जैसे जब हम किसी रोगीको चिकित्सकके (412312) पास ले जाते हैं, तो वह पहले तो यही चेष्टा करता है रावणने हँसकर कहा—'अच्छा! तो अब मुझे कि औषधिके द्वारा ही रोग शान्त हो जाय, पर अगर तुम-जैसा ज्ञानी गुरु मिला। तुम मेरी चिकित्सा करने— मुझे स्वस्थ बनानेके लिये आये हो? रावणका हँसकर औषधिके द्वारा रोग शान्त न हो तो फिर उसकी शल्य-ऐसा कहनेका तात्पर्य यह था कि मुझ-जैसे ज्ञानीको चिकित्सा भी करनी पड़ती है। भगवान्ने हनुमान्जीको इसीलिये भेजा कि तुम सद्गुरुके रूपमें वैद्य हो, इसलिये एक बन्दर शिक्षा देने आया है। रावणका रोग इतना बढ तुम जाकर रावणके रोगको देखो और उसे दूर करनेकी गया है कि हनुमान्जीकी हितकर बात भी उसे नहीं चेष्टा करो। रावण यदि स्वस्थ हो जाय तो इसके सुहाती। परिणामस्वरूप समाज भी स्वस्थ होगा। रावणकी जो सामान्य रोगी होता है, वह तो वैद्यकी बातोंपर अस्वस्थता सारे समाजको विनाशकी ओर ले जा रही विश्वास करता है और उसके कहे अनुसार पथ्य आदि है, पर हनुमान्जी-जैसे वैद्य भी चेष्टा करके रावणकी करता है। पर जब रोग असाध्य हो जाता है और रोगीकी मृत्यु होनेवाली होती है, तो बहुधा उसकी प्रकृति चिकित्सा नहीं कर पाते। कुपथ्यकी दिशामें होने लगती है, मानो उसकी प्रकृति भी हनुमान्जीने यहाँपर रावणके रोगोंको पकड़ लिया और उन्होंने यह निर्णय किया कि रावणके रोगोंकी यह वैसी ही हो जाती है। वैद्य जो कहता है, वह उसका जड़ यदि एक बार नष्ट हो जाय, तो उसके अन्य रोग ठीक उलटा ही करता है। इसीलिये लिखा हुआ है-स्वयं नष्ट हो जायँगे। इसीलिये हनुमानुजीने तुरंत काल दंड गहि काहु न मारा। हरइ धर्म बल बुद्धि बिचारा॥ रावणसे अनुरोध किया कि मैं तुम्हें कुछ और छोडनेके (६।३६।७) लिये नहीं कहता, तुम केवल एक ही वस्तु छोड दो। 'काल लाठी लेकर किसीको नहीं मारता। वह

िभाग ९४ धर्म, बल, बुद्धि और विचारको हर लेता है।' हनुमानुजी हनुमान्जीने विभीषणका घर क्यों नहीं जलाया? यही समझ लेते हैं कि रावण-जैसा व्यक्ति स्वस्थ होनेकी उनकी नीति-कुशलता थी। हनुमान्जी वस्तुत: रावणपर स्थितिमें नहीं है। आप देखते हैं कि रावण विभीषणको साम, दाम, दण्ड और भेद-इन चारोंका प्रयोग करते निकाल देता है। यह रावणके क्रोधका एक दृष्टान्त है। हैं। जब उन्होंने सामका प्रयोग किया तो रावणको तो रावणके मनमें क्रोधकी प्रतिक्रिया आयी क्यों? भाषण देकर समझाया-हुआ यह कि जिस समय रावणने हनुमान्जीको मृत्युदण्ड बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥ दिया तो विभीषण आ गये। और विभीषणने आकर —'हे रावण! मैं हाथ जोड़कर तुमसे विनती करता हूँ, तुम अभिमान छोड़कर मेरी सीखको सुनो।' फिर उसे कहा— नीति बिरोध न मारिअ दूता॥ दाम नीतिका लोभ भी दिखाया— राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥ (५। २४। ७) —'दूतको मारना नीतिके विरुद्ध है। इसे मत —'तुम भगवान्के चरणकमलको हृदयमें धारणकर लंकाका अचल राज्य करो।' हनुमान-चालीसामें आप मारिये।' आन दंड कछु करिअ गोसाँई। लोग पढते हैं-तुम्हरो मंत्र बिभीषण माना। लंकेस्वर भए सब जग जाना॥ (५। २४।८) —'इसे कोई दूसरा दण्ड दे दीजिये।' सभी लोगोंने वह मन्त्र कौन-सा है, यह हनुमान-चासीसामें इसका समर्थन किया-नहीं लिखा है। पर रामायणमें उसका उत्तर मिल सबहीं कहा मंत्र भल भाई॥ सकता है। वह मन्त्र तो हनुमान्जीने पहले विभीषणको नहीं, रावणको दिया था, पर रावणने उस मन्त्रका (५। २४।८) और तब रावणने तुरंत कहा— तिरस्कार कर दिया और विभीषणने उसे ग्रहण कर लिया। हनुमान्जीका मन्त्र क्या था? यह कि भगवान्के सुनत बिहसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर॥ चरणोंको तुम हृदयमें धारण करो और लंकाका अचल (417819) —'इस बन्दरके शरीरका अंग-भंग करके इसे राज्य करो। यह सुनकर रावण बिगड़ खड़ा हुआ वापस भेज दो।' और कहा— और बोला—'क्या मैं तुम्हारे कहनेसे लंकाका राजा बनुँगा? वह तो मैं पहलेसे ही हूँ। विभीषणने इस कपि कें ममता पूँछ पर सबिह कहउँ समुझाइ। मन्त्रको पूरी तरहसे समझ लिया था कि यह बिलकुल तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ॥ ठीक है। हनुमान्जीने रावणको दाम नीतिके द्वारा भी (4178) —'बन्दरकी ममता उसकी पूँछमें होती है। आकृष्ट करना चाहा, पर वह भी सफल नहीं हुआ। इसलिये उसकी पूँछमें कपड़ा लपेट तेलमें डुबाकर फिर उन्होंने दण्ड नीतिका प्रयोग करते हुए रावणको उसमें आग लगा दो।' यही उसके लिये उचित दण्ड धमकाया भी। उन्होंने रावणसे कहा-होगा। फिर हनुमान्जीके पूँछमें आग लगा दी गयी। संकर सहस बिष्नु अज तोही। सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥ 'तुम-जैसे रामके द्रोहीको हजारों शंकर, विष्णु उस आगसे हनुमान्जीने सारी लंका जला दी। रावणको विभीषणपर क्रोध यह देखकर आया कि सारी लंका और ब्रह्मा भी नहीं बचा सकेंगे।' दण्डनीतिके भी जल गयी, पर विभीषणका घर नहीं जला। यह बडी असफल हो जानेपर अन्तमें हनुमानुजीने भेदनीतिका बडा कडा प्रयोग किया। भेदनीतिका तात्पर्य यह है विचित्र बात है। वह सन्तोष भी कर सकता था कि 司制nduism Discord, Server https://dsg.gp/pharma\_fi\*MADETWITHHEV VFBX Arthash/Shi

हनुमान्जीद्वारा रावणकी चिकित्सा करनेका यत्न संख्या ७ ] रहे हों, वहाँ उन दोनोंमें फूट पैदा कर दी जाय। पर जीतना उतना सरल नहीं होता। इस तरह रावणका जो यहाँ हनुमान्जीकी चेष्टा दूसरे प्रकारकी है। उनकी अनियन्त्रित क्रोध है, अनियन्त्रित काम है, तथा जो चेष्टा स्वार्थी राजनीतिज्ञों-जैसी चेष्टा नहीं है। हनुमान्जीने अनियन्त्रित लोभ है, साथमें अहंकार है-वही उसके देखा कि विभीषण और रावणका एक साथ रहना विनाशका कारण बनता है। वह अपने अनियन्त्रित मानो अच्छाई और बुराईका एक साथ रहना है और कामके फलस्वरूप जगज्जननीका अपहरण कर लेता है, इस तरह साथ रहनेमें अच्छाईका लाभ बुराईको मिल तथा अनियन्त्रित लोभके कारण अपने बड़े भाई कुबेरके रहा है; क्योंकि विभीषणजी जितनी पूजा-पाठ करते धनको छीननेमें संकोचका अनुभव नहीं करता। जब हैं, वह सब रावणके द्वारा दी गयी सभी सुविधाओंके कामकी इतनी तीव्रता आ जाय कि कोई जगन्मातापर ही कुदृष्टि डाले और क्रोध इतना तीव्र हो जाय कि बीच ही तो करते हैं। इसलिये उसका पुण्य भी रावणको मिलता जाता है। इस प्रकार वह पुण्य बिना अच्छे-बुरेका विचार किये, सबको विनष्ट करनेपर पापको शक्ति प्रदान कर रहा है। इसलिये हनुमान्जीने तुल जाय, तो ऐसी स्थितिमें वह सन्निपातसे ग्रस्त तो है निर्णय लिया कि पुण्यको पापसे अलग कर देना ही। इस दृष्टान्तसे लौकिक जगत्को यह संदेश मिलता चाहिये। इसलिये हनुमानुजी भेदनीतिका प्रयोग करते है कि वैद्य चाहे जितना कुशल और प्रतिभाशाली क्यों हैं। उनका भेदनीतिका प्रयोग क्या था? न हो, और रोगीको चाहे जितनी उत्तम औषधि क्यों न दे, लेकिन जबतक उस औषधिका सेवन रोगी नहीं जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥ —'उन्होंने सबका घर तो जला दिया, पर करेगा, तबतक उसके रोगका निदान नहीं होगा। यहाँ विभीषणका घर छोड़ दिया।' और उससे रावणके रामके चरणोंको हृदयमें धारणकर सम्पूर्ण लंकाका मनमें सचम्च जबरदस्त भेद पड गया। रावणने सोचा स्वामी बना रहनेका जो मन्त्र (औषधि) रावणको कि जब मैंने इस बन्दरको मृत्युदण्ड दिया, तो इसी श्रीहनुमान्जीने दिया, उसे रावणने अहंकारवश स्वीकार विभीषणने आकर रोका था। और इस बन्दरने सारा नहीं किया और विनाशका भागीदार हुआ। यहाँ हनुमान्जीने नगर जलाया, पर इसीका घर छोड़ दिया। लगता है, रावणके भीतर जो मनोरोग था, उसका उपचार करनेका दोनों मिले हुए हैं। अब मैं इसको सह नहीं सकता। यत्न किया। किंतु मन्त्ररूपी औषधिको रावण ग्रहण हनुमान्जीको अभीष्ट भी यही था कि रावणके मनमें करनेसे इनकारकर सर्वस्वका विनाश कर लेता है, विभीषणके प्रति अविश्वास उत्पन्न हो जाय। और तब लेकिन इसी औषधि (मन्त्र)-को विभीषण ग्रहण कर रावणने क्या किया? वह यह भी निर्णय कर सकता था लेता है और लंकेश्वर बनता है। ऐसे ही यदि मानव-कि विभीषणको कैदमें डाल दे। पर उसने ऐसा नहीं जीवनमें व्यक्ति हनुमान्जीके मन्त्रको अपने जीवनमें धारण करे तो उसे भी जीवनमें स्थायी सुख-शान्ति किया। रावणने सोचा कि विभीषण! अगर तुम समझते प्राप्त होगी। यहाँ हनुमान्जीद्वारा मानव-जातिको उसके हो कि तुम्हारा घर नहीं जला, तो भले ही उस बन्दरने तुझे न जलाया हो, पर—'रावन क्रोध अनल निज' हितमें बहुत बड़ा सन्देश दिया गया है। मैं अपने क्रोधकी अग्निके द्वारा तुम्हें जलाकर नष्ट कर तुम्हरो मंत्र बिभीषण माना। लंकेस्वर भए सब जग जाना॥ दूँगा। और इस तरह लात मारकर उसे घरसे निकाल यहाँ हनुमान्जीद्वारा रावणके बहानेसे प्रत्येक देता है। अगर रावण क्रोधमें आकर विभीषणको कल्याणकामी मनुष्यको हृदयमें प्रभु श्रीरामके चरणोंको निकाल न देता, तो लंकाका रहस्य श्रीरामको ज्ञात न बसा लेनेका महामन्त्र दिया गया है। हो पाता तथा कम-से-कम भौतिक संदर्भमें रावणको [प्रे०-श्रीअमृतलाल गुप्ता]

'बार-बार नहिं पाइये, मनुष-जनमकी मौज' साधकोंके प्रति— ( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज ) एक विशेष ध्यान देनेकी बात यह है कि यह इस प्रमाद-मदिरासे उन्मत्तता छायी हुई है। नशेमें

जैसे मनुष्यको अपने शरीरका, कपडोंका होश नहीं रहता,

मानव-जीवनका समय बहुत ही दुर्लभ है और बड़ा भारी ऐसे ही इस विषयमें होश नहीं है, चेत नहीं है; इधर ध्यान

कीमती है। श्रीमद्भागवतमें बताया है— दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभंगुरः। नहीं है, लक्ष्य नहीं है। नहीं तो, ऐसे अमूल्य समयका इस

तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम्॥

'दुर्लभो मानुषो देहः'—यह मनुष्यसम्बन्धी देह—

यह मानव-शरीर महान् दुर्लभ है। इसकी प्राप्तिके लिये बड़े-बड़े देवता भी ललचाते रहते हैं। ऐसा यह मानव-

शरीर अत्यन्त ही दुर्लभ है; क्योंकि इसमें बड़ी-से-बड़ी उन्नति हो सकती है, परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है,

जीवका कल्याण हो सकता है और सदाके लिये उसे परम शान्तिकी प्राप्ति हो सकती है। ऐसे दुर्लभ शरीरको प्राप्त

करके जो इसे व्यर्थ ही खो देता है, उसे फिर बड़ा पश्चात्ताप करना पड़ता है; क्योंकि यह सर्वथा अलभ्य, अमूल्य अवसर है। अत: इस अवसरके एक-एक क्षणको

ऊँचे-से-ऊँचे काममें बितानेकी चेष्टा करनी चाहिये। समयके समान कोई अमूल्य वस्तु नहीं है। संसारमें लोग पैसोंको बडा कीमती समझते हैं, आवश्यक समझते हैं,

किंतु विचार कीजिये, जीवनका 'समय' देनेसे तो 'पैसे' मिल जाते हैं, पर पैसे देनेसे यह 'समय' नहीं मिलता। हमारे जीवनके लिये हमारे पास हजारों, लाखों, करोड़ों

पडता है: किंतु यदि हमारी आयु बाकी हो और हमारे पास एक भी कौड़ी न हो, तो भी हम जी सकते हैं। हमारे जीवनका आधार यह 'समय' है, न कि 'रुपया'। इतना

होनेपर भी हमारे भाई लोगोंकी पैसोंमें तो बड़ी भारी

आसक्ति, रुचि और सावधानी है। वे बिना मतलब एक

रुपये रहनेपर भी यदि हमारी आयु नहीं है तो हमें मरना

कौड़ी भी खर्च करना नहीं चाहते; परंतु 'समय' की ओर ध्यान ही नहीं है। हमारा समय इतनी देर कहाँ लगा और कहाँ गया, इसमें हमने क्या उपार्जन किया, क्या कमाया,

प्रकार सत्यानाश क्यों किया जाता ? समय जो निरर्थक ही चला जाता है, यही उसका सत्यानाश करना है। ऐसे अमूल्य समयको कीमती-से-कीमती काममें लगानेकी

िभाग ९४

विशेष चेष्टा करनी चाहिये। क्या करें, विचार करनेसे मालूम होता है कि बहुत-से भाई तो ताश, चौपड़, खेल-

तमाशेमें ही समयको लगा देते हैं; बीड़ी, सिगरेट, हुक्का, चरस, भाँग आदि नशेके सेवनमें इस समयको बर्बाद कर देते हैं तथा ऐसे ही हँसी-मजाकमें समय खो देते हैं। वे

सोचते नहीं कि हम इस आयुमें उपार्जन क्या कर रहे हैं और खर्च कितना हो रहा है। समय तेजीसे जा रहा है और समयके बीत जाते

ही मौत उसी क्षण आ जायगी। मृत्युमें जो देर हो रही है, केवल हमारे जीवनका समय शेष है, उसीके आधारपर। हम जी रहे हैं, यह बुद्धिके आधारपर नहीं,

बलके आधारपर नहीं, विद्याके आधारपर नहीं, बल्कि समयके आधारपर, जीवनके आधारपर, आयुके आधारपर। वह आयु इतनी तेजीसे निरन्तर जा रही है कि इसमें कभी आलस्य नहीं होता, कभी रुकावट नहीं होती। यह लगातार दौडती चली जा रही है और हम बिलकुल

असावधान हैं। कितने आश्चर्य और दु:खकी बात है! आश्चर्य इस बातका है कि बुद्धिमान् होकर हम इतनी हानि कर रहे हैं और दु:ख इस बातका है कि परिणाम क्या होगा, और वह अपना परिणाम अपनेको ही भोगना पड़ेगा। इस भूल या दु:खका परिणाम और किसीको

नहीं भोगना होगा। अतः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह जल्दी-से-जल्दी आध्यात्मिक उन्नतिमें अपने समयको लगाये। भर्तृहरिने कहा है-यावत्स्वस्थिमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा

यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः।

इस ओर हमारा ख्याल ही नहीं है। बड़े आश्चर्यकी बात है! ठीक कहा है श्रीभर्तृहरिने— पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्।

'बार-बार नहिं पाइये, मनुष-जनमकी मौज' संख्या ७ ] \*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\*\* आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान् उन्नतिका अवसर मनुष्ययोनिके सिवा और कहीं नहीं है। इसलिये बड़ी सावधानीसे काम लेना चाहिये। आजतक प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः॥ जबतक स्वास्थ्य ठीक है, वृद्धावस्था दूर है, समय चला गया है, विचार करनेसे दु:ख होता है। इन्द्रियोंमें साधन-भजन-ध्यान करनेकी शक्ति है, आयु सन्तोंने कहा है कि 'भजनके बिना जो दिन गये, वे हमारे समाप्त नहीं हो गयी है, विवेकी बुद्धिमान् पुरुषको हृदयमें खटकते हैं। किंतु भाइयो! अब क्या हो!' चाहिये कि तभीतक आध्यात्मिक उन्नतिके लिये बडा अब पछिताए होत क्या, जब चिड़िया चुग गई खेत। भारी प्रयत्न कर ले; क्योंकि जब घरमें आग लग जाय, समय चला गया, उसके लिये पछतानेसे क्या तब कोई कहे कि जल्दी करो, कुआँ खुदवाओ, आग होगा, अब तो यही है कि 'गयी सो गयी, अब राख रहीको।'जो समय बचा है, उसी समयको सावधानीके लग गयी है, जल चाहिये, जल्दी करो, तो यह सुनकर चाहे कितनी ही जल्दी की जाय, उद्योग किया जाय, साथ ऊँचे-से-ऊँचे काममें लगानेकी विशेष चेष्टा करें किंतु अब कुआँ खुदकर कब जल आयेगा? आग तो तो आगे तो नहीं रोना पड़ेगा। हो गया सो हो गया, परंतु बड़े जोरोंसे लग गयी है; इसलिये जल्दी-से-जल्दी अब आगेके लिये पूरे सावधान हो जायँ, तब ही हमारा अपने उद्धारके लिये चेष्टा करनी चाहिये। आध्यात्मिक जीवन सफल हो सकता है। उन्नतिके लिये देर नहीं करनी चाहिये। दूसरे जो आप कहेंगे कि इतने दिन चले गये, अब क्या सांसारिक काम हैं, ये आप करेंगे तो भी हो जायँगे और होगा? इसका उत्तर यह है कि अब भी निराश होनेकी आप न करेंगे तो आपके बेटे-पोते इनको कर लेंगे, परंतु बात नहीं है। जैसे कुएँमें बहुत रस्सी चली जाती है, पर आपका कल्याण कौन-से बेटे-पोते कर लेंगे? आपके एक हाथ भी रस्सी यदि हाथमें रहती है तो उससे लोटेको पास हजारों-लाखोंकी सम्पत्ति है, बहुत धन है, बड़ा कुएँसे बाहर निकालकर जल पी लेते हैं; पर यदि वह कारोबार है, किंतु आपका शरीर जाता है और पीछे कोई हाथभर भी रस्सी हाथमें नहीं रहती है, वह भी हाथमेंसे कुटुम्बी भी नहीं है, तो जितना धन है, उसको राज्य छुट जाती है तो फिर ऐसा नहीं है कि वह हाथभर ही नीचे सँभाल लेगा, आपकी मिलों-फैक्टरियोंको राज्य चला जायगी, वह तो कुएँमें ही नहीं, कुएँके जलके भी नीचे तहमें चली जायगी। फिर तो उसे निकालनेके लिये बड़ी लेगा; पर आपके उद्धारमें कमी रहेगी तो उसको कौन-सा राज्य पूरी कर लेगा। यह काम दूसरेसे होनेवाला रस्सी चाहिये, कॉॅंटा चाहिये और जब बहुत देर मेहनत नहीं; इस कामको तो आप स्वयं ही करेंगे तभी होगा; करेंगे, तब कहीं वह लोटा-डोरी मिलेगी। नहीं तो, बड़ी इसलिये मनुष्यको चाहिये कि दूसरे जितने भी काम हैं, कठिनता है। ऐसे ही आजतककी आयु कुएँमें गयी। ऐसी उनकी ओर ध्यान न देकर केवल एक आध्यात्मिक गयी कि काम नहीं आयी; किंतु अब भी जो थोड़ी-सी उम्र उन्नतिकी ओर ही ध्यान दे। नीतिकारोंने भी कहा है— शेष है, उसीको अच्छे काममें लगा दें तो हमारा मनुष्यजीवन सफल हो सकता है; पर यदि आयुका यह हरिं स्मरेत्। त्यक्त्वा बचा हुआ थोड़ा-सा समय भी यों ही बीत गया तो फिर करोड़ों कामोंको छोड़कर एक भगवान्का स्मरण करना चाहिये। दूसरे मौके तो हरेकको मिल जाते हैं, सिवा पश्चात्तापके और कुछ नहीं होगा। क्या पता है कि पर यह मौका बार-बार नहीं मिलता। फिर यह मानव-जीवन कब मिलेगा। खादते मोदते नित्यं शूनकः शूकरः खरः। 'बार-बार नहिं पाइये, मनुष-जनमकी मौज।' मनुष्य-जन्म बार-बार नहीं मिलता। इसलिये बड़ी तेषामेषां को विशेषो वृत्तिर्येषां तु तादृशी॥ सावधानीके साथ बचे हुए समयको आध्यात्मिक उन्नतिमें खाना, पीना, ऐश-आराम करना आदि तो मनुष्य विशेषरूपसे लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये। क्या, पशु-पिक्षयोंमें भी हो जाता है, परंतु आध्यात्मिक

<sub>गुलसी-जयन्तीपर विशेष</sub>— गोस्वामी तुलसीदासजीकी नाम-निष्ठा (विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीदिनेशचन्द्रजी उपाध्याय, एम०एस-सी० (कृषि), पी-एच०डी०) नाम-जपको महिमाका वर्णन करते हुए गोस्वामीजीने बीजरूपमें आये हैं-अपने अनुभवकी जो अभिव्यक्ति श्रीरामचरितमानसमें की 'राम लखन सम प्रिय तुलसी के' से 'जीह है, उसे हृदयंगम करके साधकोंको अलौकिक प्रेरणा जसोमित हरि हलधर से।' तक क्रमश: इन्हींके मिलती है— साक्षात्कारके हैं, इनमें नामके स्वामित्वका नवाँ बीजरूप इस प्रकार है—'जीह जसोमित हरि हलधर से 'अर्थात् नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को।। यदि जीभरूपी यशोदाजीके द्वारा दोनों वर्णों 'रा' और सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥ 'म' का रटन होता रहे तो ये दोनों वर्ण कृष्ण-बलरामकी जाना चहिंह गृढ़ गित जेऊ। नाम जीहँ जिप जानिहं तेहू॥ तरह आनेवाली सभी बाधाओं एवं क्लेशोंका हरण करते साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥ रहेंगे। जपहिं नामु जन आरत भारी। मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥ राम नामके दूसरे गुण पावनताका उदाहरण देखें; नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥ जिसने रामको भी भक्त हनुमान्के अधीन कर रखा है, नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसाद्। भगत सिरोमनि भे प्रहलाद्॥ तथा करोड़ों तीथींसे भी ज्यादा प्रभावी है प्रभुका पावन ध्रवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायउ अचल अनूपम ठाऊँ॥ सुमिरि पवनसुत पावन नाम्। अपने बस करि राखे राम्॥ नाम— राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता॥ सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखे रामू॥ निहं किल करम न भगित बिबेकु। राम नाम अवलंबन एकु॥ कहौं कहाँ लिंग नाम बड़ाई। रामु न सकिहं नाम गुन गाई॥ तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन।। (रामचरितमानस-बालकाण्ड) गोस्वामी तुलसीदासने अपने समस्त काव्यको पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना। गुणरहित करार देते हुए उसमें केवल एक विश्वविदित राम नामका तीसरा गुण 'पुरान श्रुति सार' पर गुण बतलाया है, वह है-श्रीराम नाम-दृष्टिपात करें, तुलसीदासजीने इसे ब्रह्मा-विष्णु-शिवका

गोस्वामी तुलसीदासने अपने समस्त काव्यको पाई न केहिं गित पितत पावन राम भिज सुनु सठ मना।
गुणरहित करार देते हुए उसमें केवल एक विश्वविदित राम नामका तीसरा गुण 'पुरान श्रुति सार' पर
गुण बतलाया है, वह है—श्रीराम नाम— दृष्टिपात करें, तुलसीदासजीने इसे ब्रह्मा-विष्णु-शिवका
भिनित मोरि सब गुन रहित बिस्व बिदित गुन एक। स्वरूप और वेदोंका प्राण ही बतलाया है—
इस अद्वितीय राम नाममें पाँच अनुपम गुण बतलाये 'बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो'

हैं— 'र''अ''म'अग्नि-सूर्य-चन्द्रका बीजाक्षर होनेसे
एहि महँ रघुपित नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥ त्रिताप (दैहिक, दैविक, भौतिक ताप)-का नाशक एवं
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥ सत्-चित्-आनन्दका स्वरूप है।

इस नामकी उदारताका विस्तृत उल्लेख राम नामका चतुर्थ गुण है—'मंगल भवन', जो श्रीरामचिरतमानसके बालकाण्ड दोहा सं०१८—२७ के अति उदार, अति पावन और श्रुति-पुरानका सार है, वह बीचमें तथा अन्यत्र भी मिलता है, इन नौ दोहोंमें मंगलकारी होगा ही, तभी तो तुलसीदासजी कहते हैं— क्रमशः नौ सम्बन्धोंके लक्ष्य हैं, जो जीवके ईश्वरप्राप्तिहेतु 'जग मंगल गुन ग्राम राम के' तथा अभीष्ट हैं, इनमेंसे किसी एक सम्बन्धसे हम ईश्वरकी 'मंगल करिन किल मल हरिन तुलसी कथा रघुनाथ की'

प्राप्ति कर सकते हैं। ये सम्बन्ध हैं—पिता, रक्षक, राम नामके पाँचवें गुण 'अमंगलहारी' पर ध्यान दें, शेषी, भर्ता, ज्ञेय, शरीरी, भोक्ता, आधेय और स्वामी। रामनामसे बड़े-से-बड़ा अमंगल ही क्या; भाग्यमें लिखा दोह्नानुसमिक्क Disaord Server https://dsc.gg/dharma-l-MADF WITH-LONE BY 20 vinash/Sha

संख्या ७] गोस्वामी तुलसीदार	पजीकी नाम-निष्ठा १९
\$	*************************************
'मेटत कठिन कुअंक भाल के'	त्रितापसे जलता रहेगा—
रामनामकी इसी महनीयताको देखते हुए तुलसीदासजी	राम राम राम जीह जौलौं तू न जिपहै।
घोषणा करते हैं, कि—	तौलौं तू कहूँ जाय, तिहूँ ताप तिपहै॥
भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥	(पद ६८)
मानसमें ही इसके उपयुक्त उदाहरणपर दृष्टिपात	प्रकारान्तरसे कवितावलीमें आपने कहा है कि—
करें—	'ऐसे कराल कलिकाल में कृपाल
१. भायँ—शंकरजी	तेरे नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिये॥'
तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥	तुलसी-ग्रन्थावलीके विविध ग्रन्थोंमें रामनामपर जो
× × ×	कुछ तुलसीदासजीने लिखा है, विस्तारभयसे वर्णन नहीं
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥	किया जा सकता, आप कहते हैं कि वे हृदय फट जायँ,
२. कुभायँ—वाल्मीकिजी	आँखें फूट जायँ और देह भस्म हो जायँ, जो रामनामका
जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥	स्मरणकर द्रवित नहीं होते, जिनसे अश्रुवर्षा नहीं होती
तथा	और देह पुलिकत नहीं होती—
उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥	हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम।
३. अनख—रावन—' <b>कहाँ रामु रन हतौं पचारी॥'</b>	द्रवहिं, स्रवहिं, पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम॥
४. आलस—कुम्भकर्ण—	हृदय सो कुलिस समान जो न द्रवइ हरिगुन सुनत।
राम रूप गुन सुमिरत मगन भयउ छन एक।	कर न राम गुन गान जीह सो दादुर जीह सम॥
संसारके जितने अमंगलकारी योग हैं, वे हमारे	स्रवै न सलिल सनेहु तुलसी सुनि रघुबीर जस।
पूर्वकृत पापोंके फलस्वरूप प्रकट होते हैं और रामनाममें	ते नयना जनि देहु राम! करहु बरु आँधरो॥
अद्भुत पापनाशनशक्ति है। कवितावलीके कुछ उदाहरण	इसीलिये तुलसीदासजी बार-बार कहते हैं—
द्रष्टव्य हैं—	राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, मूढ मन बारबारं।
<b>'भागत अभागु, अनुरागत विराग भानु।'</b> तथा	सकल सौभाग्य-सुख-खानि जिय जानि शठ, मानि विश्वास वद वेदसारं॥
' <i>आई मीचु मिटत जपत राम नामको'</i> जबकि	(विनय-पत्रिका पद ४६)
दोहावलीमें आपने कहा है—	अन्यत्र पद ६५, ६६ आदिमें भी यही भाव आया
तुलसी 'रा' के कहत ही निकसत पाप पहार।	है, वे कहते हैं—
पुनि आवन पावत नहीं देत 'म'कार किवार॥	राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे।
तथा	घोर भव-नीर-निधि नाम निज नाव रे॥
तुलसी अघ सब दूरि गे 'रा' अच्छर के लेत।	अपने लघुतम ग्रन्थ हनुमानचालीसामें आपने
फिर नेरे आवत नहीं 'म' अच्छर किह देत॥	हनुमानजीको निवेदित किया है कि 'राम'-नामरूपी
जब पापका क्षरण होगा, अमंगलका नाश होगा तो	महौषधि' आपके पास है।
लोक-परलोकमें सुधार होगा ही—	'राम रसायन तुम्हरे पासा'
समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के॥	गोस्वामीजीके ज्योतिष ग्रन्थ 'रामाज्ञा प्रश्न'में भी
राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता॥	रामनाम-माहात्म्यपरक कई दोहे द्रष्टव्य हैं, यथा—
विनय-पत्रिकामें चेतावनी देते हुए गोस्वामीजी	राम नाम कलि कामतरु सकल सुमंगल कंद।
कहते हैं कि, जबतक तू राम नामका जप नहीं करेगा,	सुमिरत करतल सिद्ध जग, पग-पग परमानंद॥

घर-घर मांगत टूक, पुनि भूपति पूजत पाय। तथा-ते तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय॥ राम नाम पर राम ते प्रीति प्रतीत भरोस।

सो तुलसी सुमिरत सकल सगुन सुमंगल कोस॥ तुलसीदासजीका स्पष्ट मत है कि जीवनमें अभीष्ट

आलोक और आह्लाद केवल रामनामसे ही प्राप्त हो

सकता है। राम नामरूपी ज्ञानका आलोक मोह,

तिमिरको दूरकर अन्दर-बाहर सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश फैला देता है।\* आह्लाद चित्तको प्रसन्न करता है।

लौकिक आह्लाद प्राप्त होता है-धनागम एवं प्रतिष्ठासे

तो अलौकिक आह्लाद राम-स्वरूपके चित्तमें प्रकट होनेसे मिलता है। तुलसीदासजी स्वयं अपना उदाहरण

राम

नाम

देते हैं-

प्रसाद राम नाम के पसारि पाय सुतिहौं॥

होकर सोता हूँ।

स्पष्ट है कि तुलसीदासजीके मतमें राम नामका

आश्रयण और जप ही अभीष्ट एवं कल्याणकारी है।

वे तो यहाँतक कहते हैं कि रामनामका जप करके

मैंने रामको भी ठग लिया है। राम नाममें प्रीति, प्रतीति,

विश्वास है और राम नामकी कृपासे मैं अब निश्चिन्त

तुलसी गरीब की गई बहोर राम नाम,

जाहि जपि जीहँ रामहू को बैठो धूतिहौ।

प्रीति रामनामसो, प्रतीत राम नाम की,

िभाग ९४

# राम और नाम

भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मन माहीं॥

### सुकंठ बिभीषन दोऊ। राखे सरन जान सबु कोऊ॥ गरीब अनेक नेवाजे। लोक बेद बर बिरिद बिराजे॥

सकुल रन रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगु धारा॥ अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी॥

भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥

सुमिरत नामु सप्रीती। बिनु श्रम प्रबल मोह दलु जीती॥ फिरत सनेहँ मगन सुख अपनें। नाम प्रसाद सोच नहिं सपनें॥

ब्रह्म राम तें नामु बड़ बर दायक बर दानि। रामचरित सत कोटि महँ लिय महेस जियँ जानि॥

श्रीरामजीने सुग्रीव और विभीषण दोको ही अपने शरणमें रखा, यह सब कोई जानते हैं; परंतु नामने अनेक गरीबोंपर

कृपा की है। नामका यह सुन्दर विरद लोक और वेदमें विशेषरूपसे प्रकाशित है। श्रीरामजीने तो भालू और बन्दरोंकी सेना

बटोरी और समुद्रपर पुल बाँधनेके लिये थोड़ा परिश्रम नहीं किया; परंतु नाम लेते ही संसार-समुद्र सूख जाता है।

सज्जनगण!मनमें विचार कीजिये [ कि दोनोंमें कौन बड़ा है ?] । श्रीरामचन्द्रजीने कुटुम्बसहित रावणको युद्धमें मारा, तब

सीतासहित उन्होंने अपने नगर ( अयोध्या)-में प्रवेश किया। राम राजा हुए, अवध उनकी राजधानी हुई, देवता और मुनि सुन्दर वाणीसे जिनके गुण गाते हैं। परंतु सेवक (भक्त) प्रेमपूर्वक नामके स्मरणमात्रसे बिना परिश्रम मोहकी प्रबल

सेनाको जीतकर प्रेममें मग्न हुए अपने ही सुखमें विचरते हैं, नामके प्रसादसे उन्हें सपनेमें भी कोई चिन्ता नहीं सताती। इस प्रकार नाम [निर्गुण] ब्रह्म और [सगुण] राम दोनोंसे बड़ा है। यह वरदान देनेवालोंको भी वर

देनेवाला है। श्रीशिवजीने अपने हृदयमें यह जानकर ही सौ करोड़ रामचरित्रमेंसे इस 'राम' नामको

[साररूपसे चुनकर] ग्रहण किया है। [श्रीरामचरितमानस] \* राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार। तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहिस उजिआर॥

# श्रावणमास और उसके व्रत-पर्वोत्सव

श्रावणमास और उसके वृत-पर्वोत्सव

कहलाता है। लोकमें इसे 'सावन' भी कहते हैं। यह मास भगवान् शंकरको विशेष प्रिय है, इसलिये इस मासमें आशुतोष भगवान् साम्बसदाशिवकी पूजा-आराधनाका विशेष महत्त्व है। जो प्रतिदिन पूजन न कर सकें, उन्हें सोमवारको शिवपूजा अवश्य करनी चाहिये और व्रत रखना चाहिये। सोमवार भगवान्

चान्द्रवर्षके अनुसार वर्षका पाँचवाँ मास श्रावणमास

संख्या ७ ]

शंकरका प्रिय दिन है। शिवोपासनाका अत्यन्त व्यापक रूप है, तथापि भक्त अपनी भावनाके अनुसार कृपाप्राप्तिके लिये अनेक प्रकारसे उनकी आराधना करते हैं। भगवान् शिव सगुण-साकार-मूर्तरूपमें तथा निर्गुण-निराकार-अमूर्तरूपमें भी पुज्य हैं। परम शिव, साम्बसदाशिव, उमा-महेश्वर, अर्धनारीश्वर, मृत्युंजय, पंचवक्त्र, पशुपति, कृत्तिवास, दक्षिणामूर्ति, योगीश्वर, महादेव तथा महेश्वर आदि नाम-

रूपोंमें भगवान् शिवकी आराधना होती है। इसके अतिरिक्त ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात— ये भगवान् शिवकी पाँच मूर्तियाँ हैं, पंचवक्त्रपूजनमें इन्हीं नामोंसे पूजन होता है। शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान और महादेव—ये क्रमश: पृथिवी, जल, तेज, वायु,

आकाश, क्षेत्रज्ञ, सूर्य तथा चन्द्रमें अधिष्ठित मूर्तियाँ हैं। ऐसे ही रुद्ररूपमें एकरुद्र, एकादशरुद्र तथा असंख्यात रुद्रोंके रूपोंमें उन्हींकी आराधना होती है। निर्गुण-निराकाररूपमें हृदयदेशमें उनका ध्यान किया जाता है। लिंगोपासना तो व्यापकरूपमें अनुष्ठित होती ही है। इन विविध शिवोपासनाओंका अनुष्ठान श्रावणमासमें विशेष फलदायी तथा भगवान् शंकरको प्रीति प्रदान करनेवाला होता है। ऐसे ही शिवमहिमापरक शिवपुराण-लिंगपुराण आदिके पारायण-श्रवण आदिका भी श्रावणमासमें विशेष माहात्म्य है।

श्रावणमें सोमवारका व्रत, प्रदोषव्रत तथा

शिवपार्थिव-पूजन परम कल्याणकारी है। सोमवारको यदि प्रदोष पड़ जाय तो वह विशेष फलदायक होता

है। व्रतके दिन भगवान् शंकरका षोडशोपचार अथवा पंचोपचार-पूजन, पंचाक्षरमन्त्रका जप, स्तोत्र-पाठ,

अभिषेक आदि विशेषरूपसे करना चाहिये। यह सायंकाल

(प्रदोषकालमें) करना विशेष महत्त्वपूर्ण है। दिनभर

व्रत रहकर पूजनोपरान्त रात्रिमें एक बार भोजन करे। भोजनमें कुछ लोग एक अन्न खानेका भी नियम रखते हैं अथवा केवल फलाहार करते हैं। भगवान् शिवका पंचाक्षर मन्त्र 'नमः शिवाय' श्रावणमासमें विशेष रूपसे जपनीय है। ॐकारसे समन्वित

होकर यह षडक्षर कहलाता है। श्रावणमासमें लघुरुद्र, महारुद्र तथा अतिरुद्रपाठ करानेका भी विधान है। यजुर्वेदान्तर्गत रुद्राष्टाध्यायीका इसमें विशेषरूपसे पाठ होता है। यह अनुष्ठान पाठात्मक,

अभिषेकात्मक तथा हवनात्मक—तीन रूपोंमें होता है। भगवान् शंकरको जलधारा विशेष प्रिय है, अत: श्रावणमासमें जो वर्षाऋतुका समय है, भगवान् शंकरका

अभिषेक तथा बिल्वपत्रोंसे उनका अर्चन किया जाता है। बिल्वपत्र तोड़ते समय वृक्षको प्रणामकर निम्न

मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये-

अमृतोद्भव श्रीवृक्ष महादेवप्रियः सदा।

गृह्णामि तव पत्राणि शिवपूजार्थमादरात्॥ (आचारेन्दु)

िभाग ९४ अर्थात् हे अमृतसे उत्पन्न बिल्ववृक्ष! आप सदा तृतीयाके समान ही श्रावण कृष्ण तृतीया भी महादेवजीके प्रिय हैं, आपके पत्तोंको मैं शिवजीकी **'कज्जलीतृतीया'** कहलाती है। इसे कजलीतीज भी पूजाके उद्देश्यसे आदरपूर्वक ग्रहण करता हूँ। कहते हैं। इस तिथिको श्रवण नक्षत्रमें भगवान् विष्णुका ऐसे ही शिवाराधनामें भस्म एवं रुद्राक्ष-धारणका पूजन किया जाता है। पूर्वी उत्तर प्रदेशमें विशेषरूपसे भी विशेष महत्त्व है। कजली तीज मनानेकी परम्परा है। इसमें 'कजरी' श्रावणमासमें जिस प्रकार भगवान् शंकरकी आराधना का गायन भी होता है। यह एक प्रकारसे लोकोत्सवपर्व की जाती है, वैसे ही भगवान् विष्णुकी पूजाके साथ ही है, इस दिन स्त्रियाँ बड़े समारोहसे मेंहदी लगाती हैं उनका दोलारोहणोत्सव तथा झुलनोत्सव भी मनाया और झूला झूलती हैं। इसी तिथिको 'स्वर्णगौरीव्रत' जाता है। श्रीराम तथा भगवान् श्रीकृष्णके मन्दिरोंमें भी भी किया जाता है। श्रावण कृष्ण चतुर्थीको 'संकष्ट-विविध प्रकारकी झाँकियाँ सजायी जाती हैं और उत्सव चतुर्थीव्रत' होता है। इसमें भगवान् गणेशकी आराधना होता है। सभी प्रकारकी आराधनाओंकी दृष्टिसे होती है। श्रावणकृष्ण सप्तमीको 'शीतलासप्तमीव्रत' श्रावणमासका विशेष महत्त्व है। होता है तथा शीतलादेवीका पूजन होता है और श्रावणमासमें जैसे सोमवारव्रतकी महिमा है। वैसे शीतलामाताकी कथा सुनी जाती है। ही मंगलवारको भी व्रत किया जाता है और उनमें श्रावणकृष्णपक्षकी एकादशी 'कामदा एकादशी'-के नामसे विख्यात है। इसके माहात्म्यके विषयमें भगवान् शिवप्रिया भगवती मंगलागौरीका पूजन होता है। श्रीकृष्णने युधिष्ठिरजीको बताया कि इस दिन व्रत करके विशेष रूपसे विवाहके बाद प्रत्येक स्त्रीको चार-पाँच वर्षोंतक यह व्रत करना चाहिये। यह व्रत अखण्ड तुलसीमंजरीसे भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये, इससे सभी प्रकारके अभीष्ट प्रयोजनोंकी सिद्धि होती है। सौभाग्य तथा पुत्रकी प्राप्तिके लिये किया जाता है। श्रावणशुक्लपक्ष पर्वोत्सवोंकी दृष्टिसे विशेष भगवती मंगलागौरीको निम्न मन्त्रसे प्रणाम करना चाहिये— कुङ्कमागुरुलिप्ताङ्गां सर्वाभरणभूषिताम्। महिमामय है। श्रावणशुक्ल तृतीयाको 'तीज' का मुख्य पर्व होता है। उत्तरभारतमें तीजपर्व बड़े उत्साह नीलकण्ठप्रियां गौरीं वन्देऽहं मङ्गलाह्वयाम्॥ अर्थात् कुंकुम और अगुरुसे लिप्त अंगोंवाली तथा एवं समारोहके साथ मनाया जाता है। इसे श्रावणीतीज, हरियालीतीज या कजलीतीज भी कहते हैं। यह सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित भगवान् नीलकण्ठ महादेवजीकी प्रिया मंगलागौरीकी मैं वन्दना करता हूँ। विशेषरूपसे बालिकाओं और नवविवाहिता स्त्रियोंका पर्व है। मेंहदी लगायी जाती है, नये वस्त्राभूषण चार वर्षतक लगातार मंगलवारका व्रत करके धारण किये जाते हैं तथा झुलनोत्सव होता है, प्रकृतिके बादमें उद्यापन करना चाहिये। उल्लासके साथ मानवमनका उल्लास जुड़ जाता है।

नारींभार्पांक्राकानिविष्यांक्राक्षित्र त्रिक्ष्मिक्षा hattps:/// hatthattakha

कृषिकर्मका आरम्भ भी होता है। अत: घर-घर इस

श्रावणशुक्ल पंचमी '**नागपंचमी**' के नामसे विख्यात है।

लोकाचार या देशभेदसे कहीं-कहीं कृष्णपक्षमें यह पर्व

होता है। पंचमीतिथि नागोंके आविर्भावकी तिथि है। अत:

श्रावणशुक्ल चतुर्थीको **'दुर्वागणपतिव्रत'** होता है।

पर्वका उल्लास छाया रहता है।

श्रावणमास भगवदाराधना एवं अनुष्ठानका मास है, व्रत-पर्वोंका मास है। इस मासमें प्राय: प्रत्येक तिथिको कोई-न-कोई व्रत, पर्व, उत्सव एवं त्यौहार हुआ ही करता है।

श्रावण कृष्ण द्वितीयाको 'अशून्यशयनव्रत'

सम्पन्न होता है। इस व्रतसे वैधव्य तथा विधुरत्वका

परिहार होता है। इसमें उपवासपूर्वक भगवान् लक्ष्मी-

संख्या ७] श्रावणमास और उ	सके व्रत-पर्वोत्सव २३
	****************
भय नहीं रहता है। विषदोष भी दूर हो जाता है। नाग	मनाया जाता है और इसी तिथिको श्रावणी उपाकर्म
भगवान् शंकरके आभूषणके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। अत: यह	होता है। रक्षाबन्धनमें पराह्मव्यापिनी तिथि ली जाती
प्रकारान्तरसे भगवान् शिवके पूजनका ही प्रतीकरूप है।	है। यदि वह दो दिन हो या दोनों ही दिन न हो तो
दीवाल या भित्तिपर नागोंका अंकन किया जाता है, प्रतिमा	पूर्वा लेनी चाहिये। यदि उस दिन भद्रा हो तो उसका
आदि बनाकर भी पूजन किया जाता है। नागोंको दूध	त्याग कर देना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि इस दिन
अर्पित किया जाता है और नागपंचमीकी वह कथा सुनी	प्रातः नदी आदिमें सविधि स्नान करके तर्पण आदि
जाती है, जिसमें नागमाता क्रदू और गरुड़माता विनताका	करे। दोपहरमें निर्मित रक्षासूत्रकी प्रतिष्ठाकर उसका
वृत्तान्त वर्णित है।	पूजन करे और ब्राह्मणसे हाथमें बँधवाये। इस दिन
राजस्थान आदि कुछ प्रदेशोंमें नागपंचमीका त्यौहार	बहनें भी भाइयोंको रक्षा बाँधती हैं।
श्रावणकृष्ण पंचमीको मनाया जाता है।	श्रावणशुक्ल पूर्णिमा उपाकर्मका मुख्य काल है।
श्रावणशुक्लपक्षकी एकादशी <b>'पुत्रदा एकादशी'</b>	वेदपारायणके शुभ कार्यको उपाकर्म कहते हैं। यह
कहलाती है। इसके माहात्म्यमें आख्यान आया है कि	यज्ञोपवीत होनेके अनन्तर ही होता है। इस दिन प्रतिष्ठित
प्राचीनकालमें माहिष्मतीपुरमें महीजित् नामक एक राजा	नूतन यज्ञोपवीत धारण किया जाता है। इस दिन
राज्य करते थे, उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये वे	सर्वप्रथम तीर्थकी प्रार्थनाके अनन्तर पंचगव्यका प्राशनकर
निरन्तर चिन्तित रहते थे। एक बार उन्होंने प्रजाके सामने	प्रायश्चित्तसंकल्प एवं हेमाद्रिस्नानसंकल्पसे दशविध स्नान
अपना दु:ख निवेदन किया और पुत्रप्राप्तिका उपाय	होता है। तदनन्तर अरुन्धतीसहित ऋषिपूजन, सूर्योपस्थान,
पूछा। राजा बड़े ही प्रजावत्सल थे, अत: प्रजाजन	ऋषितर्पण, यज्ञोपवीतपूजन तथा नवीन यज्ञोपवीत धारण
राजाके कष्टके निवारणके लिये महर्षि लोमशके पास	करनेकी विधि है। धारण किये यज्ञोपवीतको विसर्जितकर
गये और राजाको पुत्रप्राप्ति कैसे हो—इसका उपाय	प्रतिष्ठित नूतन यज्ञोपवीत धारण किया जाता है, यज्ञोपवीत
उनसे पूछा, तब महर्षिने कहा कि देखो! राजा महीजित्	धारण करनेका मन्त्र इस प्रकार है—
जो इस समय राज्यका भोग कर रहे हैं, यह इनके किसी	यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
जन्मान्तरीय पुण्यका फल है, किंतु पूर्वजन्ममें ये एक	आयुष्यमग्रयं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥
धनहीन वैश्य थे। एक बार प्याससे पीड़ित ये किसी	(ब्रह्मोपनिषद्)
जलाशयके पास पहुँचे, संयोगसे वहींपर बछड़ेके साथ	इस प्रकार श्रावणशुक्ल पूर्णिमाको श्रावणमास
एक प्यासी गौ भी पानी पीने आयी, इन्होंने प्यासी गौको	पूर्ण होता है। इस मासके कृत्योंके सम्बन्धमें महाभारतमें
वहाँसे हटाकर स्वयं पानी पिया। इसी पापसे आज ये	बताया गया है कि श्रावणमें पूरे मासपर्यन्त संयम-
पुत्रहीन हैं, इन्हें चाहिये कि श्रावणमासके शुक्लपक्षकी	नियमपूर्वक जो एकभुक्तव्रत करता है और प्रतिदिन
पुत्रदा एकादशीका विधिविधानसे व्रत करें, पुत्रकी प्राप्ति	भगवान् शंकरका अभिषेक करता है, वह स्वयं भी
होगी। इतना सुनकर प्रजाजनोंने महर्षिको प्रणाम किया	पूजनीय हो जाता है तथा कुलकी वृद्धि करते हुए
और स्वयं पुत्रदा एकादशीका व्रत किया तथा उस व्रतका	उसका यश एवं गौरव बढ़ानेवाला हो जाता है—
फल राजाको दे दिया। व्रतके पुण्यप्रतापसे राजाको पुत्र	, श्रावणं नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत्।
प्राप्त हुआ।	तत्र तत्राभिषेकेण पूज्यते ज्ञातिवर्धनः॥
श्रावणशुक्ल पूर्णिमाको <b>'रक्षाबन्धन'</b> का पर्वोत्सव	्. (पुरुषार्थचिन्तामणि)
<del></del>	

( ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ )

जाना कि उसके दुर्गुण, दोष, बुराई दिखायी ही न दें। कोई आकर बताये तब भी विश्वास ही न हो, बल्कि सुनानेवालेपर क्रोध आने लग जाय। राग और आगमें राग अधिक खतरनाक है, क्योंकि आग तो छूनेपर ही

रागका मतलब है—एकतरफा आकर्षण या

स्नेहकी अधिकताके कारण उपजी मनोवृत्ति, जो कि

प्रेमका विकृत रूप है। दोनों ओरसे परस्पर आकर्षण हो

तो प्रेम कहा जाय। राग रंगको भी कहते हैं, मतलब

किसीके रंगमें रँग जाना। किसीपर इतना आसक्त हो

जलाती है, पास आनेपर ही जलाती है, परंतु राग तो हजार कि.मी. दूरसे भी जलाता है। आग केवल शरीरको जला सकती है, परंतु राग तो दिलको जलाता है, धीरे-धीरे देहको भी घुन-जैसा लग जाता है। राग व्यक्तिको अन्धा बना देता है। कहते हैं कि लोचनान्धको नहीं दिखता, परंतु रागान्धको नेत्र होनेपर भी नहीं दिखता (रागान्धो नैव पश्यित)। इसका उत्कृष्ट उदाहरण है धृतराष्ट्र। उसे अपने दुष्ट पुत्र दुर्योधनके दोष नजर ही

बीजमन्त्र-विशिष्ट आग ही राग है, जिसमें मन्त्रजन्य दाहकता भी समाविष्ट है। द्वेषका मतलब है — अकारण ही किसी व्यक्तिके प्रति एकतरफा घृणाका भाव मनमें आना, परिणामत:

नहीं आते। पुत्रविषयक रागरूपी रतौंधी (मोतियाबिन्द)-ने धृतराष्ट्रके विवेकरूपी नेत्रोंको हर लिया है। रागमें जो रहे, वह है अग्निबीज। र+आग=राग अर्थात् अग्नि-

उसकी हर क्रियामें कमी नजर आने लग जाती है। जिससे द्वेष हो जाता है, उसमें दोष ही दोष नजर आते हैं, गुण दिखते नहीं। इसीलिये कहा है कि द्वेषान्थो नैव पश्यति। इसका प्रमुख उदाहरण है शिशुपाल, जिसे

श्रीकृष्णमें कोई अच्छाई दिखायी ही नहीं देती। दुर्योधनको

दुनियाके किसी चिकित्सकके पास नहीं है और इस

रोगसे पीड़ित रोगी हमारे-आपके बीच फैले हुए हैं,

किसीको इसकी चिन्ता ही नहीं। कैंसर, मधुमेह (शुगर),

हार्ट, ब्रेनकी चर्चा है, चिन्ता है, परंतु जिस महामारीने

पूरे विश्वकी मानवीय संवेदनाओंको तहस-नहस करके

रख दिया, समग्र मानवजातिकी मानसिक शान्ति तथा

आनन्दके उपवनको उजाङ डाला, भयंकर महायुद्धोंके दावानलमें समग्र विश्वको झोंक डाला, उसका ही नाम

रोगीको खबर ही नहीं चलती कि वह राग अथवा द्वेषसे

पीड़ित है। यदि उसकी प्रवृत्तियोंसे आहत परिवारके,

पड़ोसके, गाँवके अथवा अन्य हितैषी जन उसे समझानेकी

कोशिश करते हैं तो वह अधिक नाराज होकर द्रुत गतिसे इस बीमारीको हृदयमें सँजोता जाता है, लोगोंपर आक्षेप

करता है कि आप सब मेरी उन्नतिसे जलते हैं। अन्तत:

भाई! इसका उपचार होनेमें कठिनाई ये है कि

है 'राग-द्वेष' और इसकी चिन्ता किसीको नहीं।

सुबुद्ध लोग समझाकर (जैसे धृतराष्ट्रको विदुर-भीष्म-द्रोण-व्यास-नारदादि समझाकर थक गये थे, परंतु वह

पाण्डवोंमें कोई गुण नजर ही नहीं आता। राग-द्वेष एक ऐसी लाइलाज मानसिक बीमारी है, जिसकी दवा स्वीकार ही नहीं करता कि मैं गलत हूँ) थककर अलग

संख्या ७ ] राग-द्वेष कि जो हमारे अपने हैं, उनमें कोई दोष नहीं है? कोई हो जाते हैं, चुप रहकर महाविनाशके ताण्डवको देखते रहते हैं। बुराई नहीं है? अथवा जिनको हमने विरोधी माना है, क्या उनमें कोई अच्छाई नहीं है? कोई गुण नहीं है? रागान्ध अपनोंके दोष नहीं देख पाता। द्वेषान्ध परायोंके गुण नहीं देख पाता। अर्थात् यथार्थ देखने तथा यदि अच्छाई-बुराई है तो उनको भी समझें कि अपनोंमें जाननेकी अक्षमता रागद्वेषजन्य है, और इसकी चिकित्सा क्या दुर्गुण हैं तथा परायोंमें क्या सदुगुण हैं? है सत्संगरूपी दर्पणमें आत्मालोचन—आत्मचिन्तन। षष्ठ चरण 'सचके करीब'—विरोधियोंकी स्वयंका स्वयंके द्वारा सुक्ष्म निरीक्षण तथा स्वाध्याय अच्छाईका विचार करो, उसकी समाजमें चर्चा करो, इसकी पहचानका सहज उपाय है। यथा— बुराईकी उपेक्षा करो तथा अपनोंकी बुराईका विचार प्रथम चरण 'कौन'— आप एकान्तमें बैठकर करो, उसको एकान्तमें बुलाकर समझाओ, मगर ध्यान सहज भावसे विचार करें कि दुनियामें वह कौन व्यक्ति देना-अच्छाईकी चर्चा समाजमें करना, परंतु बुराईको अकेलेमें ही बताना। कोई आपसे पूछे भाई! इतना है, जो मुझे सबसे ज्यादा प्यारा लगता है और वह कौन है, जिसका नाम सुनते ही, चेहरा दिखते ही मन खिन्न झमेला क्यों करें दूसरोंके लिये? व्यर्थ समय बर्बाद करनेसे क्या ? भाई! ये समय दूसरोंके लिये नहीं है, यह हो उठता है। फिर मनमें उन लोगोंको एक तरफ रखो, जो आपको बहुत अच्छे लगते हैं तथा दूसरी तरफ तो अपने मनको लगी बीमारीकी दवा चल रही है, उनको रखो, जो आपको बुरे लगते हैं। देखना बहुत कम समयमें आपके मनसे राग-द्वेषकी द्वितीय चरण 'क्यों'—अच्छे लगनेवाले आपको बीमारी खत्म हो जायगी। आप सचको देख पायेंगे तथा क्यों अच्छे लगते हैं ? तथा बुरे लगनेवाले आपको क्यों समझ पायेंगे। परिणामत: आपको नि:सीम शान्ति तथा बुरे लगते हैं? कारण खोजो, सोचो। आनन्दकी प्राप्ति होगी। आपको अनावश्यक किसीसे न तृतीय चरण 'कबसे'— अब आप थोड़े गम्भीर तो आसक्ति होगी, न ही घृणा होगी। होकर विचार करो कि जो अच्छे लगते हैं, वे कबसे आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें राग-द्वेष ही महाबाधक है। आपको संसारमें किसी भी नाशवान् व्यक्ति, वस्तु, स्थान, अच्छे लगने लगे? वह घटना क्या हुई, जिसके कारण आत्मीयता बनी तथा जो बुरे लगते हैं, वे कबसे बुरे पदार्थसे राग हो गया तो अविनाशी ब्रह्मसे आपका चित्त लगने लगे? क्या कारण बने। हट जायगा। आपको किसीसे द्वेष हो गया तो भी चित्तका चतुर्थ चरण 'क्या'—आओ, आगे बढ़ते हैं, अब विकार खिन्नता देगा, फलत: आपकी प्रसन्नता चली ये विचार करना है कि किसी अच्छे लगनेवाले व्यक्तिमें जायगी। आप ब्रह्म-चिन्तनसे विरत हो जाओगे। अतः आपको क्या-क्या अच्छा लगता है? चेहरा, आँखें, न तो किसीसे राग करो, न ही द्वेष। संसारको स्वप्नकी शरीर, रंग, कोई गुण, गाना, कविता, उसका बोलना या तरह अथवा फिल्मकी तरह देखो। ये राग-द्वेष जीवनको सच्चा व्यवहार। और बुरे लगनेवालेमें आपको क्या-क्या विषम बनाते हैं, जबिक समतामय जीवन ही सत्य जीवन बुरा लगता है ? रूप, रंग, जाति, दुर्गुण, झूठ, गन्दी भाषा, है, योगयुक्त जीवन है—**समत्वं योग उच्यते।** रागसे प्रेरित रूखा व्यवहार आदि। सोचिये, क्या ये गुण या दोष होकर किसीकी प्रशंसा न करे तथा द्वेषसे प्रेरित होकर हमेशा रहेंगे? नहीं न, तो फिर क्यों ख़ुदको बाँधे हो? किसीकी निन्दा न करे, यह आदर्श जीवनका सार है एवं पंचम चरण 'सचकी ओर'—अब विचार करो सुखी तथा आनन्दमय जीवनकी कुंजी है।

महामारी और हमारी स्वास्थ्य-रक्षक सेना

( श्रीहनुमानप्रसादजी गोयल )

[आजकल कोरोना वायरसके संक्रमणने पूरे विश्वको भयाक्रान्त कर दिया है। इस महामारीकी कोई सटीक

लक्षण हों तो तत्काल चिकित्सकको दिखायें इत्यादि।

चुकी हैं, जिनपर कालान्तरमें चिकित्साशास्त्रियोंने विजय पा ली।

पाठकोंके लिये पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।—सम्पादक]

केशव—पिताजी! माताजीको बुखार आ गया है।

पिता — बुखार न आये तो क्या हो। इतनी बार उन्हें

पिता-जब हमारे शरीरके हर एक कल-पुर्जे

समझा चुका, वह अपने स्वास्थ्यपर ध्यान देतीं ही नहीं।

केशव—स्वास्थ्य किसे कहते हैं? पिताजी!

अपना-अपना काम ठीक ढंगसे करते रहते हैं, तब उस अवस्थाको हम स्वास्थ्य कहते हैं। जब वे अपना काम

ठीक ढंगसे नहीं करते या उनमें कोई खराबी पैदा हो

जाती है, तब उसे हम रोग या बीमारीके नामसे पुकारते

केशव—पिताजी! बीमारी कैसे पैदा होती है?

पैदा होनेके कारण भी बहतेरे हैं; किंतु मोटे तौरसे हम

कह सकते हैं कि कुछ बीमारियाँ तो ऐसी हैं, जो खान-

पान या रहन-सहनकी खराबियोंसे पैदा हो जाती हैं-

जैसे अपच, मन्दाग्नि, वात, गठिया, सिरका दर्द, पेटका

दर्द, कब्जियत इत्यादि; और कुछ ऐसी हैं, जो छुतही हैं अर्थात् छूतसे पैदा होती हैं-जैसे प्लेग, हैजा, चेचक,

पिता - बीमारियाँ बहुत तरहकी होती हैं और उनके

चारपाईपर पडी हैं।

हैं।

उपायोंका ही सहारा लिया जा रहा है, यथा—१-संक्रमित व्यक्ति और वस्तुओंसे दूर रहें। २-सफाईका बहुत ध्यान

रखें, ३-हाथोंको बार-बार साबुनसे धोयें। ४-अनावश्यक आवागमन एवं स्पर्शसे बचें। ५-जीवनीशक्ति-वर्धक पदार्थोंका

सेवन एवं स्वास्थ्यपरक दिनचर्याका पालन करें। ६-यदि श्वास लेनेमें तकलीफ, खराश, खाँसी, जुकाम, बुखार इत्यादि

फलस्वरूप विदेशोंसे उत्पन्न हुई है। संयमित जीवन-शैली एवं स्वच्छताके नियमोंका पालनकर हम इस महामारीके प्रकोपसे बच सकते हैं। विश्वमें इसके पूर्व भी प्लेग, चेचक, हैजा इत्यादि महामारियाँ अपना विकराल रूप दिखा

गोयलका एक लेख कल्याणमें प्रकाशित हुआ था, जिसमें महामारीके स्वरूप और स्वास्थ्यरक्षक दिनचर्याके विषयमे सुबोध ढंगसे सुन्दर प्रकाश डाला गया था। वर्तमान परिस्थितियोंमें इस लेखकी प्रासंगिकता देखते हुए इसे कल्याणके

वस्तुत: यह बीमारी प्रकृतिके प्रतिकूल जीवन-शैलीके वरण एवं मांस आदि अभक्ष्य पदार्थोंके भक्षणके

पहले भी एक बार महामारीकी विषम परिस्थिति उत्पन्न होनेपर पिता-पुत्र-संवादकी शैलीमें श्रीहनुमानप्रसादजी

ぎ?

सदीं जुं से में प्रेसिंग के प्रेसिंग प्रस्ति हैं से प्रेसिंग के स्वयं प्रस्ति के स्वयं प्र

बड़ा करके दिखा दे।

केशव—ये छूतकी बीमारियाँ किस तरह पैदा होती

पिता — छूतसे पैदा होनेवाली बीमारियाँ वास्तवमें

छोटे-छोटे कीडोंसे उपजती हैं। ये कीडे इतने छोटे होते

हैं कि साधारण आँखोंसे दिखायी नहीं देते। इसीसे इन्हें कीटाणु कहकर पुकारते हैं। इन्हें देखनेके लिये एक ऐसे

यन्त्रकी आवश्यकता होती है, जो छोटी-छोटी चीजोंको

पिता—उस यन्त्रको अणुवीक्षणयन्त्र कहते हैं।

उसके द्वारा हम छोटी-से-छोटी वस्तुको भी बिलकुल

आसानीके साथ देख सकते हैं। ये यन्त्र कई प्रकारके

होते हैं-कोई कम शक्तिका और कोई ज्यादा शक्तिका।

जो यन्त्र जितनी ही ज्यादा शक्तिका होगा, उससे उतनी

ही बारीक चीज देखी जा सकेगी। रोगके कीटाणुओंको

देखनेके लिये बहुत तेज शक्तिके यन्त्रोंकी जरूरत हुआ

करती है; क्योंकि ये कीटाणु बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। केशव—अच्छा, तो ये कीटाणु होते कैसे हैं?

पिता—ये कीटाणु अनेक प्रकारके होते हैं, किंतु

केशव — वह यन्त्र कौन-सा है?

औषि। आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान अभीतक नहीं खोज पाया है। इस वायरससे रक्षाके लिये अभी कुछ रक्षात्मक

[भाग ९४

संख्या ७]	महामारी और हमारी	स्वास्थ्य-रक्षक सेना २५	9
<b>\$</b> \$\$\$\$\$\$	*****	*********************	<b>5</b> 5
(१) <sup>१</sup> पहियेकी तरह गोल आकारमें	, (२) <sup>२</sup> डंडीकी	पहुँच जाते हैं और कुछ रोगी मनुष्यके पहने हुए वस्त्रोंर	
तरह लंबे और (३) <sup>३</sup> लहरियेदार या उर्ग	मेठनदार शकलमें।	चिपककर एकके पाससे दूसरेके पास जा पहुँचते हैं	1
इनकी बहुत–सी जातियाँ हैं और उन	के रूप-रंग और	कुछ कीटाणु ऐसे भी हैं, जो किसी खास किस्मवे	5
स्वभावके अनुसार अलग-अलग नाम	भी हैं; किंतु तुम्हें	जानवरके काटनेसे ही हमारे खूनमें पहुँच जाते हैं।	
उस झगड़ेमें पड़नेकी जरूरत नहीं।	केवल इतना ही	केशव—तब इनसे बचनेका उपाय क्या है?	
समझ लो कि जितने भी प्रकारके छुत	हे रोग होते हैं—	<b>पिता</b> —इनसे बचनेका सबसे बड़ा उपाय तो उर	9
अर्थात् सर्दी और जुकाम-जैसे साधाः	एण रोगोंसे लेकर	परम पिता परमात्माने ही हमारे शरीरके भीतर कर रख	Π
क्षय, चेचक, हैजा और प्लेग-जैसे भ	यंकर रोगोंतक—	है। उसने हमारे अन्दर करोड़ों सिपाहियोंकी एक ऐसे	J
सबकी उत्पत्तिके लिये अलग-अलग	जातिके कीटाणु	सेना पैदा कर दी है, जो हर समय हमारे शरीरक	ो
हुआ करते हैं।		रखवाली किया करती है और शरीरके एक सिरेसे दूसं	रे
<b>केशव</b> —लेकिन इन कीटाणुओंर	ने कैसे रोग होता	सिरेतक दिन-रात चक्कर लगा-लगाकर पहरा दिय	Π
है ?		करती है। जहाँ कोई शत्रु हमारे भीतर घुसा कि इर	Ŧ.
<b>पिता</b> —बात यह है कि इन की	ाटाणुओंमें अपनी	सेनाके बहुत–से सिपाही झट उसपर टूट पड़ते हैं औ	₹
संख्याको बढ़ानेकी बड़ी विचित्र शक्ति	हुआ करती है।	उसे मार-मारकर बाहर निकालनेकी चेष्टामें लग जा	ते
हर एक कीटाणु अपने शरीरको बढ़ाव	<b>फर दो टुकड़े</b> कर	हैं।	
देता है, जिससे एककी जगह दो कीट	ग्रणु बन जाते हैं।	केशव—ओहो! ये सिपाही कौन हैं?	
इस प्रकार क्षणभरमें ही इनकी संख्या दु	रुगुनी हो जाती है।	पिता—ये हमारे खूनके सफेद कण हैं। हमारे खून	Ť
हमारे शरीरमें यदि इनमेंसे एक भी की	ोटाणु किसी तरह	दो प्रकारके अत्यन्त नन्हें-नन्हें जीवाणु पाये जाते हैं-	-
प्रवेश कर पाये और उसकी बाढ़के	लिये परिस्थिति	एक लाल और दूसरे सफेद। इनकी शकल पहियोंक	ो
बिलकुल अनुकूल हो तो उससे इसी तर	ह एकसे दो, दोसे	तरह घेरेदार हुआ करती है। ये हमारे खूनके जीवित कप	Л
चार और चारसे आठ होते हुए कुछ ह	ो समयमें करोड़ों	हैं और खूनके साथ–साथ सारे शरीरमें चक्कर लगाय	Π
कीटाणु पैदा हो जायँगे और हमारे शरी	रके अन्दर उनकी	करते हैं। इनमेंसे लाल कणोंका काम शरीरके तमा	Ŧ
एक भारी बस्ती तैयार हो जायगी।		अंगोंको भोजन ढो-ढोकर पहुँचाना है और सफे	7
<b>केशव</b> —तब उससे क्या होगा?		कणोंका काम शरीरकी रक्षा करना है। बहुत छोटे होनेवे	5
<b>पिता</b> —बस, फिर वे तमाम कीट	गणु हमारे खूनके	कारण आँखोंसे ये नहीं दिखायी देते, किंतु अणुवीक्षणयन्त्रक	गे
साथ मिलकर सारे शरीरमें चक्कर ल	नगाने लगेंगे और	सहायतासे हम इन्हें जब चाहें देख सकते हैं। जिस समन	7
खूनमें अपना जहर भरकर हमारे शर्र	रिमें पेंचीले और	किसी रोगके कीटाणु हमारे खूनमें पहुँचते हैं तो ये सफे	7
सुकुमार पुर्जोंमें तरह-तरहकी खराबिर	याँ पैदा कर देंगे,	कण हमारी रक्षाके लिये उनसे बड़ी तत्परताके साथ ज	Π
जिससे हम बीमार पड़ जायँगे।		भिड़ते हैं और फिर कुछ समयतक उन दोनोंमें एक खास	J
<b>केशव</b> —लेकिन पिताजी! ये रोग	कि कीटाणु हमारे	कुश्ती होती रहती है। यदि हमारे सफेद कण रोगवे	5
शरीरमें पहुँच कैसे जाते हैं?		कीटाणुओंसे शक्ति और संख्यामें बलवान् हुए तो वे इन	€ 1
<b>पिता</b> —इनकी पहुँच हमारे शरीरग	में अनेक प्रकारसे	तुरंत नष्ट कर डालते हैं या कम-से-कम इनकी बाढ़क	ते
हो सकती है। कुछ तो हवामें उड़कर	साँसके साथ आ	ही रोक रखते हैं, जिससे हमारे शरीरको किसी तरहक	
जाते हैं; कुछ दूध, जल या भोजनके सा	थ मिलकर अन्दर	हानि नहीं पहुँचने पाती। वास्तवमें यह भी नहीं मालू	Ŧ
१- Coccus २- Bacillus ३- Spirilus	m		-

िभाग ९४ होता कि हमारे शरीरमें किसी रोगके कीटाणुओंने प्रवेश कूदकर छलाँग मार सकते हो। अब तुम्हीं सोचो कि यह भी किया था या नहीं, किंतु यदि हमारे सफेद कण इनसे ऐसा शरीर और इतना बल तुमने कहाँसे पाया। भोजनसे कमजोर पड़े तो फिर वे स्वयं नष्ट होने लगते हैं और ही न? अस्तू, हम क्या खायँ और कैसे खायँ, इस रोगके कीटाणु तेजीके साथ बढ़कर सारे शरीरपर अपना विषयमें हमें सदैव सावधान रहना चाहिये। अवसर अधिकार जमा लेते हैं, जिससे हम बीमार पड़ जाते हैं। मिलनेपर किसी दिन इसकी बावत हम तुम्हें अधिक केशव—ये बातें सुननेमें बड़ी अद्भुत जान पड़ती विस्तारसे समझायेंगे। अभी केवल इतना ही समझ लो कि हमारे खाने-पीनेकी चीजें सदा ऐसी होनी चाहिये, हैं। पिता—हाँ, लेकिन हैं ये बिलकुल सच! हम बहुधा जो बल और स्वास्थ्यको बढ़ानेवाली हों और आसानीसे देखते हैं कि कोई आदमी तो छुतहे रोगीके पास दिन-पच सकें। रात सोता-बैठता है और उसकी सेवा किया करता है, केशव—ये चीजें कौन-सी हैं? लेकिन फिर भी बीमार नहीं पड़ता और कोई केवल दस-पिता—ताजे फल, दूध, मक्खन और मेवोंका पाँच मिनटके लिये वहाँ रोगीका हाल-चाल देखने आता स्थान—इस विचारसे सबसे ऊँचा है। इनके बाद रोटी, है और घर पहुँचते ही बीमार पड़ जाता है। इसका कारण दाल, भात, तरकारी, शाक और घीका नंबर आता है। क्या है ? रोगके छुतहे कीटाणु तो दोनोंहीके शरीरमें प्रवेश पूड़ी, मिठाई, पकवान, चाट और दही-बड़े आदिका करते हैं, किन्तु पहला आदमी बीमार नहीं पड़ता; क्योंकि नंबर तो बहुत नीचे है, क्योंकि ये चीजें अधिक देरमें उसके खुनमें सफेद कण रोगके कीटाणुओंसे अधिक पचती हैं और शरीरकी अपेक्षा केवल जीभको ही ज्यादा बलवान् हैं और इसलिये उन्हें रोक रखते हैं। दूसरा सुख देनेवाली हैं। किंतु ध्यान रहे कि उत्तम भोजन भी आदमी बीमार पड़ जाता है; क्योंकि उसके खूनमें सफेद जरूरतसे ज्यादा या बेवक्त खा लेनेसे विषके समान हो कण उतने मजबूत नहीं हैं और उन कीटाणुओंको दबा जाता है। साथ ही जो भोजन खूब चबाकर नहीं खाया जाता, वह भी पेटके लिये बोझ बन जाता है। सड़ा, नहीं सकते। गला, बासी या देरका रखा हुआ भोजन भी हर्गिज नहीं केशव—तब इन सफेद कणोंको बलवान् बनानेका उपाय क्या है? खाना चाहिये। ऐसा भोजन तामसी कहा गया है और पिता—इन्हें बलवान् बनानेका सबसे सुन्दर और शरीरके साथ-साथ हमारी बुद्धिको भी भ्रष्ट कर देता है। सीधा उपाय यह है कि हम बराबर ऐसे नियमोंका पालन केशव—मैं इन बातोंपर ध्यान रखूँगा। करते रहें, जिनसे हमारे शरीरका बल और उनकी शक्ति पिता — हाँ, और साथ ही हमें अपने रहन-सहनपर बराबर बढती जाय। इसके लिये सबसे पहले हमें अपने भी ध्यान रखना होगा। खान-पान और रहन-सहनको ठीक रास्तेपर रखना होगा। केशव—वह क्या? केशव - खान-पान हमें कैसा रखना चाहिये? पिता—वह है मुख्यत: सफाई और सदाचार। ये दोनों ही बातें स्वास्थ्य-दृष्टिसे भोजनसे कम महत्त्व नहीं पिता—खान-पानका सवाल हमारे शरीरमें और स्वास्थ्यके लिये बड़े महत्त्वका है। तुम जानते हो कि जो रखतीं। सफाईके अन्दर भोजनकी सफाई, पानीकी कुछ तुम खाते हो उसीसे तुम्हारा खून बनता है, उसीसे सफाई, हवाकी सफाई, शरीरकी सफाई, वस्त्रोंकी सफाई, तुम्हारा बल बढ़ता है और उसीसे तुम्हारा शरीर भी बड़ा घर-द्वारकी सफाई और पास-पडोसकी भी सफाई शामिल है। इनके अतिरिक्त मन, स्वभाव और चरित्रकी होता है। जन्मके समय तुम्हारा शरीर कैसा नन्हा-सा था, किंतु आज यह इतना बड़ा हो गया। उस समय तुम स्वच्छता भी सदाचारके अन्दर आ जाती है। इस प्रकार उठकर बैठ भी नहीं सकते थे, परन्तु आज तुम उछल-अपने रहन-सहनमें हमें सब प्रकारकी सफाई और

संख्या ७ ] भगवान् शिवकी शरणागितसे परम कल्याणकी प्राप्ति निर्मलता लानेकी जरूरत है। याद रहे कि जितने भी सम्बन्ध है। अतएव शरीरके स्वास्थ्यके लिये मनकी प्रकारके रोग और रोगके कीटाणु हैं, सब गन्दगीमें ही शक्ति, जिसे हम इच्छा-शक्ति भी कहते हैं, बहुत पनपते हैं। सफाई और प्रकाशमें उनकी बाढ और शक्ति आवश्यक है: और यह शक्ति उन लोगोंको आसानीसे क्षीण होती है। साथ ही सफाई और प्रकाश हमारे खुनके प्राप्त हो जाती है, जिनका मन निर्मल है और जो कणोंको बल देते हैं। इससे हममें रोगोंको रोकनेकी शक्ति चरित्रवान् हैं। केशव—तो मन और चरित्रको निर्मल रखनेके आती है। इस प्रकार सफाई हमारी दो तरहसे सहायक है। एक ओर तो वह हमारी शक्तिको बढाती है और लिये उपाय क्या है? दूसरी ओर वह हमारे शत्रुओंकी शक्तिको क्षीण करती पिता—इसका सबसे सीधा उपाय यह है कि ब्रे है। अतएव इसका साथ हमें जीवनपर्यन्त छोडना उचित और गंदे विचारवाले लोगोंकी संगतसे बचो, पवित्र और नहीं। ऊँचे विचारवाले लोगोंका सत्संग करो, बुद्धि और केशव—परन्तु पिताजी! मन और चरित्रकी सफाईमें ज्ञानको बढ़ानेवाली पुस्तकें पढ़ो और अपने मनमें हर एक स्वास्थ्यका क्या सम्बन्ध है? बातपर स्वतन्त्ररूपसे सोचनेकी आदत डालो। जब कभी पिता—देखो, जिस प्रकार बाहरी सफाईसे शरीरको तुम्हारा मन भटककर किसी बुरे रास्तेपर जाना चाहे तो शक्ति मिलती है, उसी प्रकार मन और चरित्रकी उसे पुरी शक्तिसे रोको और उसके परिणामोंपर विचार स्वच्छतासे मनको भी शक्ति प्राप्त होती है। मन है करो। साथ ही ईश्वरसे प्रार्थना करो कि वह तुम्हारे शरीरका राजा। उसीके कहनेपर शरीर चलता है। अतएव मनको इतनी शक्ति दे कि तमाम बुरे विचारोंसे तुम यदि मन कमजोर हुआ तो फिर शरीरपर वह अपना काब् अपनेको दूर रख सको। नहीं रख सकता और न उससे स्वास्थ्यके नियमोंका केशव—में अवश्य ऐसा ही करूँगा। आज मैंने ठीक-ठीक पालन ही करा सकता है। तुमने सुना होगा कितनी ही नयी बातें सीखीं। मैं इन सबोंको ध्यानमें रखूँगा। कि यूरोपमें कितने चिकित्सक रोगीको केवल यह पिता—यदि आजकी बतायी हुई तमाम बातोंको विश्वास दिलाकर अच्छा कर देते हैं कि तुम अब अच्छे तुम ध्यानमें रखोगे और उनके अनुसार चलनेकी चेष्टा करोगे तो ईश्वर अवश्य तुम्हारा कल्याण करेगा और हो। जिस रोगीके मनमें जितना यह विश्वास जम जाता शारीरिक स्वास्थ्यके साथ-साथ मनका स्वास्थ्य और है, उतना ही जल्दी वह अच्छा भी हो जाता है। कहनेका मतलब यह कि शरीरका मनके साथ बहुत ही घना शक्ति भी तुम लाभ करोगे। भगवान् शिवकी शरणागितसे परम कल्याणकी प्राप्ति कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखदाता। संसारहेतुरपि पुनरन्तकालस्तं शङ्करं शरणदं शरणं य: विगतमोहतमोरजस्का भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः। ध्यायन्ति चाखिलिधयोऽमितदिव्यमूर्तिं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥ 'जो इस सम्पूर्ण चराचर-जगत्के कर्ता और इसे अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार सुख-दु:ख देनेवाले हैं, जो संसारकी उत्पत्तिके हेतु तथा उसका अन्तकाल भी स्वयं ही हैं, सबको शरण देनेवाले उन्हीं भगवान् शङ्करकी में शरण लेता हूँ। जिनके मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, वे योगीजन, भक्तिसे मनको एकाग्र रखनेवाले निष्काम भक्त तथा अपरिच्छिन्न बुद्धिवाले ज्ञानी भी जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं, उन अनन्त दिव्यस्वरूप शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ।'

'अब चित चेति चित्रकूटहि चलु' तीर्थ-दर्शन— ( डॉ० श्रीअनुजप्रतापसिंहजी, डी०लिट० ) मैं चित्रकूट वर्षमें एकबार अवश्य जाता हूँ, पर जब कि वनवास तो केवल मुझको मिला है। सीताजीको भी जाता हूँ, तो कोई नयी वस्तु अवश्य दिखायी पड़ती माताओंने भी वन न जानेके लिये समझाया, पर उन्होंने है, इसके साथ ही अनेक रहस्य भी उद्घाटित होते हैं। अपना धर्म बताकर सबको मौन कर दिया। कुछ लोगोंने चित्रकृटकी महिमा पुराणों और रामकथासे सम्बन्धित उनको मिथिला (मायके) चले जानेकी राय भी दी। ग्रन्थोंमें विशेष रूपसे गायी गयी है, सबकी उद्धरणी बहुत लक्ष्मणजीने इसको अपना कर्तव्य बताया, सेवा-धर्म लम्बी होगी। त्रेतायुगमें रामने वनवासके मध्य जब इसपर और रक्षाधर्म बताया। अन्ततः पातिव्रत और बन्धुधर्मकी लगभग साढे दस वर्षतक निवास किया तो इसकी महत्ता विजय हुई। इसी क्षण कैकेयीने तीनों लोगोंके लिये तीन विश्वविदित हो गयी। आज भी कहीं कोई न्यूनता नहीं वल्कल वस्त्र लाकर दे दिये और कहा कि इनको पहनो है। इसके विविध आकर्षण बने हुए हैं। और जंगलको जाओ। पूरा जनसमूह जड़-सा हो गया।

इसका अमर इतिहास है। देशकी सभी भाषाओं में रचित रामायण ग्रन्थोंमें इसकी चर्चा है। इतिहास और भारतीय भूगोल तथा पुरातत्त्वसम्बन्धी ग्रन्थोंमें इसकी चर्चा है। यह रामके संकटका साथी रहा है, जो संकटका साथी रहता है, वह कभी नहीं भूलता है, कृतघ्नी चरित्रोंकी बात दूसरी है। जब सभी वैभवसे पूर्ण पैतृक राजधानी अयोध्या, वहाँके प्राणी, सरयूनदी, भरा-पूरा परिवार यहाँतक कि पिता और विमाताने साथ नहीं दिया। ज्योतिषविद्याने साथ नहीं दिया, तब साथ दिया

गृह-त्यागका हो गया। नियतिको कोई नहीं जानता है। वसिष्ठजीने कुण्डली बनायी थी, उसमें इस प्रकारकी कोई विसंगति नहीं थी। पूरी अयोध्या हतप्रभ हो गयी। वनवासके विविध प्रारूप बनने लगे—(१) सुमन्तजी वनका भ्रमण कराकर रामको वापस अयोध्या ले आयेंगे। (२) वनमें एक महल बनाया जाय, जिसमें राम १४

चित्रकृटने। गुरु वसिष्ठ तथा अन्य ज्योतिषियोंने जो शुभ

मुहूर्त राजतिलकके लिये सुनिश्चित किया था—वही

वर्षतक निवास कर अयोध्या आयेंगे। इसी मध्य महारानी कैकेयी ने घोषणा कर दी कि वल्कल वस्त्रोंमें, उदासीनताके साथ १४ वर्षतक राम

वनवास करेंगे। राम-वनवासकी घोषणाके उपरान्त यह

दुसरी दुर्घटना वनवासके स्वरूपको लेकर हो गयी।

आया हूँ।' वे कहीं उद्विग्न नहीं होते हैं। सुमन्तजीको शान्तिपूर्वक विदा करते हुए भी उन्होंने कहा—पिताजीसे कह दीजियेगा कि दुखी न हों, मैं चौदह वर्षींके उपरान्त

अयोध्या लौटकर आ जाऊँगा, पर लक्ष्मणने स्वभावत: कुछ कड़ा संदेश दिया और रामको शान्ति-सन्देशसे रोका भी था। दशरथजी तीनोंकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उन्होंने रिक्त रथको लेकर आये हुए सुमन्तजीको देखा तो नैराश्य,

राम, लक्ष्मण और सीता वल्कलको धारणकर

अवध राजभवनसे बाहर हो गये। सुमन्तजी रथपर

बैठाकर जब सबको जंगल ले जाने लगे तो जनमानस

आगे लेट गया, रामने सहजभावसे सबसे कहा-माता-

पिताकी आज्ञा है, उसको मैं टाल नहीं सकता हूँ।

आपलोग मेरा सहयोग कीजिये, भीड़ पीछे हो गयी।

प्रथम रात्रिनिवास तमसा नदीके तटपर हुआ। यह स्थान

फैजाबाद-सुलतानपुरके बीच है। प्रात: रथके साथ

जनसमृह अयोध्या लौट जाता है, रामके आग्रहसे। राम दक्षिण दिशाकी ओर आगे बढते हैं। रास्तेमें उनसे लोग

मिलते हैं, वे तरह-तरहके प्रश्न करते हैं, राम एक ही उत्तर सबको देते हैं—'मैं पिताके वचनको मानकर वन

रामका रथ चला, जनसमूह उसके साथ चला।

िभाग ९४

बेचैनी और आत्मग्लानिमें डूब गये। सुमन्तजीके निकट अगले क्षणमें कुलवधू सीताजी और भाई लक्ष्मणने आनेपर उन्होंने पूछा—वे लोग लौटे नहीं ? सुमन्तजीने Hinduism Discord Server https://dsc. qg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Shart सीथ-साथ चलनके लिये कहा। रामने समझाया कहा—नहीं, मेने विनय तो बहुत की दिशरथजीन पूछा—

संख्या ७] 'अब चित चेि	ा चित्रकूटहि चलु <sup>'</sup> ३१
**************************************	**************************************
आते समय उन लोगोंने कुछ कहा? सुमन्तजी बोले—	भोजन बनाती हैं। वहाँ सीता-रसोई और सीताकुण्ड
हाँ, रामने कहा कि पिताजीसे कह दीजियेगा कि वे स्वस्थ	नामके स्थान हैं। वहाँ उन्होंने भोजन करके विश्राम
और प्रसन्न रहें, हमलोग जंगलमें रह लेंगे और चौदह	ं किया था। वहाँसे वे लोग वाल्मीकि-आश्रम गये।
वर्ष उपरान्त लौटकर उनसे मिलेंगे, इसके उपरान्त	वाल्मीकि-आश्रमसे चित्रकूट ३० किलोमीटरकी दूरीपर
लक्ष्मणने उत्तेजित होकर कहा—रहने दीजिये, उस्	है। महर्षि वाल्मीकिसे परामर्श करके वे लोग चित्रकूट
पिताको क्या सन्देश देते हैं, जिसने बिना सोचे-विचारे	पहुँचे थे और वहाँ कामदिगरिको उन्होंने अपना प्रवास-
किसीके कहनेपर जंगलमें भेज दिया। दशरथजीको	स्थल बनाया। कामदगिरितक बड़ा-सा पहाड़का टिल्ला
असह्य आत्मपीड़ा होने लगी। पीड़ा इस बातकी हुई कि	है, जिसके ऊपर समतल है। दो छेद हैं, जिनमें चिमटे-
जिसको मैंने वनवास दिया, उसने तो आत्मीयतासे पूर्ण	जैसे लोहे फँसे हैं। हो सकता है, इन्हींमें दोनों लोग
सन्देश दिया और जिसको मैंने वनवास नहीं दिया—जे	धनुषको खड़ा करके रखते रहे हों। वनवासके बारहवें
अपने मनसे गया, उसने कटु वचन कहा। मैं कितना पार्प	वर्षतक लोग यहीं रहे। दस वर्ष छ: माहतक यहाँ
हूँ कि ऐसे शीलगुणी रामको वनवास दे दिया। यर्ह	रहनेका उल्लेख है।
शीलका फूटना है। जब क्रोध फूटता है, तो उसक	अब मैं अयोध्यासे चित्रकूटकी यात्राका वर्णन
समाधान हो जाता है, परंतु जब शील फूटता है, तो उसक	ं करता हूँ। यह यात्रा तीनों लोगोंने नंगे पैर चलते,
समाधान नहीं होता है। रामका शील यहाँ फूटता है	कन्दमूल खाते और कुश–काथरीपर सोते हुए की थी।
राजा दशरथ उद्वेलित होते हैं, पश्चात्ताप करते हैं। वे बार-	अलंकार और आध्यात्मिक पुटमें चाहे जो कहा जाय,
बार अपराधबोधसे ग्रसित होते हैं, सोचते हैं कि मैं कितन	पर रामको वनवासमें दुखोंके चरमोत्कर्ष मिलते हैं। आज
बड़ा अपराधी हूँ कि राम-जैसे शीलवान्, धैर्यशार्ल	भी उक्त मार्गपर नंगे पैर चलनेमें अपार कष्ट होता है।
पुत्रको वनवास दे दिया। दशरथजीकी मृत्युमें यह	विचित्र कंकड़-पत्थर, उतार-चढ़ाव, कॉॅंटे, गुरुखुल हैं।
पश्चात्ताप सहायक सिद्ध हुआ।	राम गाँव और नगरोंमें नहीं जाते थे। निषाद उनको
राम धोपाप (सुलतानपुरके आगे)-में स्नान-पूज	अपना सबकुछ दे रहा था। किष्किन्धाके राजभवनमें वे
करके प्रयागकी ओर बढ़ते हैं। भरद्वाज-आश्रममें वे	रह सकते थे। गाँवके किसी निवासीके यहाँ जा सकते
भरद्वाजजीसे अपने निवासके लिये स्थान पूछते हैं, तो वे	थे, पर वे आद्योपान्त शुद्ध वनवासी ही बने रहे।
दार्शनिक उत्तर देते हैं कि आप कहाँ नहीं हैं ? फिर वे	चित्रकूट, रामनिवास और कामदगिरिका वर्णन
चित्रकूटके कामदगिरिपर ठहरनेकी सलाह देते हैं। राम	वाल्मीकि-रामायण, पुराण, काव्य, नाटक और स्फुट
विन्ध्यभूमिकी ओर बढ़ते हैं। इसी अन्तरालमें पिताजीर्क	साहित्यमें है। इसका स्वस्थ, पावन इतिहास और भूगोल
मृत्युकी सूचना मिलती है। विन्ध्याचल (वर्तमान) औ	है। राम–लक्ष्मण और सीताका आश्रयदाता है न। आज
मीरजापुरके मध्य वे गंगा पार करके स्नान-पूजा औ	भी वहाँके लोग बताते हैं कि रातको दो व्यक्ति एक
बालूका पिण्ड बनाकर पिण्डदान करते हैं। सीतार्ज	स्त्रीके साथ घूमते हुए दृष्टिगत होते हैं। उनसे सम्बन्धित
गंगाकी धाराके किनारे अयोध्याकी ओर मुख करके दोने	ं कुछ घटनाएँ भी घटती रहती हैं। आज भी लोग इसके
हाथोंको जोड़कर वर माँगती हैं कि—'हे गंगा माँ! हम	सर्वोच्च समतल भागपर यदि चले जाते हैं तो मानसिक
तीनों सकुशल लौटें।' वह स्थान 'राम–गया' कहा जात	सन्तुलन खो बैठते हैं। महाकवि निराला भी लगभग
है। आज भी लोग वहाँ बालूका पिण्डदान करते हैं	•
शवदाह करते हैं।	थे। उनसे भी दो व्यक्ति मिले थे। मेरे मित्र भी वहीं जा
आगे वे लोग अष्टभुजापर रुकते हैं, सीतार्ज	रहे थे। उनके गाँवके चार लोग भी साथमें थे, वे आधी

भाग ९४ चढ़ाईसे उतर आये। मित्र आचार्यजीसे उन लोगोंने कहा राज्यका कहीं लोभ, गर्व या दिखावा नहीं, निष्काम कि हमलोग यहीं बैठे हैं, आप ऊपर जाइये। वे जब कर्मयोगी वे बने रहे। ऊपर गये तो उनसे दो लोग मिले, उन लोगोंने पूछा— चित्रकूटके कामदगिरिपर जहाँ सभा हुई थी, वह तुम यहाँ क्यों चले आये? आचार्यजीने कहा—ऊपर स्थल पूर्ण सुरक्षित है। राम-भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न, जाना है, प्यास लगी है। पहाड़के भीतरसे पानी निकल विसष्ठ और जनकके स्थल सबसे मार्मिक हैं। जहाँ रहा था। उसकी धारामें किसीने पाइप लगा दी थी तो माताएँ बैठीं थीं, उन्हींके आसपास सीताजी भी बैठी थीं। पानीकी धारा उपयोगके लिये सुलभ हो गयी थी। जहाँ कौसल्या और सुमित्रा बैठी थीं। वहाँका पत्थर सामनेके दोनों लोगोंने कहा—यह पानी रिस रहा है, पी घिसठ गया और आज भी उक्त स्थानोंपर कड़ाहीके लो। वे अँजुरीसे पानी पीने लगे। पानी पीनेके उपरान्त आकारके गड्ढे हैं। जहाँ कैकेयी बैठी थी—वहाँका जब उन्होंने देखा तो वे दोनों व्यक्ति न थे। आचार्यजी पत्थर फट गया था। सभी चिह्न घेरेके भीतर सुरक्षित पासके पत्थरके आसनपर बैठकर उन दोनोंके सम्बन्धमें हैं,लोग कहते हैं कि कैकेयीका हृदय इतना कठोर था सोचने लगे, भयभीत भी हुए, रोंगटे खड़े हो गये, फिर कि जहाँ वह बैठती थी तो वह स्थान (धरती-पत्थर) अचेत हो गये। नीचे बैठे हुए गाँवके लोग सायंतक फट जाता था। यह पूर्ण सत्य न हो तो कुछ तो होगा उनकी प्रतीक्षा करके गाँव चले आये। आचार्यजीकी ही, नहीं तो भुलक्कड़ संसार अबतक भूल गया होता। चेतना जब दूसरे दिन लौटी, तो वे गाँव गये। तबसे वे वाल्मीकि-रामायणमें चित्रकूट-प्रसंग अति विस्तारसे असाधारण रहने लगे, असीमित वार्ता करते, बारह बजे है। तुलसीदासको चित्रकूटमें ही राम-लक्ष्मणके दर्शन हुए थे। हनुमान्जीका निर्देश मिला था। तुलसीदास रातके बाद सोते। गाँवके पासके शहरमें वे सामान लेने गये, तो रिश्तेदारीमें चले गये और तीन माह उपरान्त चन्दन घिस रहे थे और रघुवीर अपने मस्तकपर चन्दन वापस आये। वे विश्वविद्यालयमें संस्कृत विभागाध्यक्ष लगा रहे थे। तुलसीदासजीने चित्रकूटको 'चतुर अहेरी' थे। उन्होंने किसी तरह नौकरी पूरी की। वे संस्कृतके कहा है—जो सभी विकारों, पापोंको दूर करके मनोकामनाकी पूर्ति करता है। यह सिद्धपीठ है। विपत्तिका साथी,

अच्छे कवि और वक्ता हैं। वे लगभग हर बार चित्रकृट रामायण मेला में आते हैं। एक वर्ष वे मेरे पासके कमरेमें रुके थे। आचार्यजीकी मानसिक स्थितिको देखते हुए उनकी पत्नी अब प्राय: साथमें रहती हैं। यहाँ अन्य लोगोंको भी कभी दो पुरुष धनुष-बाण लिये, नंगे पाँव, नंगे वदन एक स्त्रीके साथ रातमें दिखायी पड़ते हैं। प्राणनाथ १६८७ ई० में बिना विपदामें पड़े ही गये थे। चित्रकृटकी महासभा, जिसमें अयोध्या और

वापस गये तो उसीको आगे बढाते रहे। चौदह वर्षतक

रामके खडाऊँने राज्य किया, यह भरतजीकी देन है।

अनाथोंका नाथ और अगृहीका गृह है। अब्दुल रहीमको जब अपदस्थ करके मुगलशासनने अवध सूबेसे निकाल दिया था, तो वे चित्रकूटमें ही रहते थे। उन्होंने कहा है कि अवधका नरेश (सूबेदार) चित्रकूटमें रह रहा है; जिसपर विपदा पड़ती है, वह यहाँ आता है। पर महामति

श्रीरामनवमीके दिन वे कुछ अनुयायियोंके साथ चित्रकूट मिथिलाका समाज रहा, उसका बडा महत्त्व है। भरत-गये थे। वहाँ उन्होंने पावन वाणी कुलजमस्वरूपके रामका मिलन तो अद्भुत और अद्वितीय रहा; न भूतो अन्तिम ग्रन्थ 'कयामतनामा'की रचना की। महाराज न भविष्यति। मुनियोंकी मति भी अबला-सी हो जाती छत्रसालके विशेष अनुरोधपर वे पन्ना (मध्यप्रदेश) लौट गये। वहीं १६९४ ई० में उन्होंने समाधि ली। सुन्दरलालने है। रामराज्यकी स्थापना चित्रकूटमें हुई। उस प्रारूपको उनकी वाणीको प्रतिष्ठित किया, जो आज भी है। भरतजीने अवधमें क्रियान्वित किया। जब राम अवधमें

महाराजा छत्रसाल भी वहाँ आये थे। परिक्रमा

(कामदिगिरि)-मार्गको उन्होंने व्यवस्थित और विस्तृत

संख्या ७] 'अब चित चेति'	चित्रकूटिह चलु' ३३
\$	************************************
कराया था। रींवा/बांधवनरेश अनवरत चित्रकूटसे जुड़े	पहले थे। मन्दाकिनी नदी भी थी। सबके इतिहास और
रहे हैं। मन्दािकनी घाटपर उनका आवास और मन्दिर है।	महिमाका वर्णन भारतीय वाङ्मयमें है।
चित्रकूटका आधासे अधिक भाग मध्यप्रदेशमें है।	आज जो चित्रकूटके वासी हैं—वे झुग्गी-झोपड़ी
शेष उत्तरप्रदेशमें है। आज चित्रकूटधाम नामसे जनपद	और मिट्टी तथा खपरैलके मकानवाले ही हैं। गाँवोंमें
हो गया है। चित्तौड़गढ़का भी पूर्व नाम चित्रकूट रहा	जो हैं, वे भी कोई बड़े आदमी नहीं हैं।
है। चित्रकूट शैलीकी पीठिका, प्रासाद शैली आदिका	तीर्थरूपमें महत्त्व होनेसे सन्त-महात्मा यहाँ पहुँचे,
राजा भोजने अपने ग्रन्थमें सम्मानपूर्वक स्मरण किया है।	उनके मठ-मन्दिर बने, उनकी गायें भी पहुँचीं। रामभक्ति-
चित्तौड़में राजा भोजने अपना कौमारकाल पूरा किया	धाराके सन्त-महन्त अधिक पहुँचे। इससे एक लम्बी
था। इसके साथ उन्होंने अपने ग्रन्थ 'समरांगणसूत्रधार'को	शिष्य-मण्डलीका यहाँ आना-जाना और रहना प्रारम्भ
पूर्ण किया था।	हुआ। भक्ति-मठ-आन्दोलनमें यहाँ मन्दिर अधिक बने।
चित्रकूटमें अतीत और वर्तमानका समन्वय है।	अपनी परम्पराके अनुसार वे चल रहे हैं। नयी रीतिके
सिद्धान्त और व्यवहारका समन्वय है। कामदगिरिकी	मठ-मन्दिर, होटल, यात्री-निवास, व्यक्तिगत एवं पर्यटन
परिक्रमा राम-कृष्णके अतिरिक्त रामकथाके महत्त्वपूर्ण	विभागके यात्री निवास बने हैं। पास-पड़ोसमें अधिकारियों,
पात्रोंके मन्दिर और सम्प्रदायोंके मठ हैं। पुस्तक एवं	शिक्षकों और धर्मप्रेमियोंके आवास बन रहे हैं। अधुनातन
पूजा-पाठको सामग्रीको दुकानें हैं। सबमें समन्वयी भाव	रीतिसे इसका पूर्ण विकास हो रहा है। लोग कामदगिरिकी
है। खाने-पीने और जलपानमें भी नयी-पुरानी व्यवस्था	परिक्रमा, मन्दाकिनीमें स्नान-पूजा करके अपनी रुचिके
है। प्रायः लोग सायं और प्रातः परिक्रमा करते हैं। कोई	अनुसार विविध आवासोंमें रहते हैं। देशभरके लोग यहाँ
सामान्य रूपसे चलकर तो कोई लेटकर करता है।	आते हैं, संस्कृतियों और सभ्यताओंका संगम होता है।
जनश्रुति है कि वाल्मीकिके आश्रमसे चित्रकूटतक	राष्ट्रीय रामायण-मेलाका विशाल प्रांगण, मंच और
भरतजी लेटकर आये थे। उनका अनुकरण आज भी	आवासीय भवन है। विद्वानोंके व्याख्यान, रामलीला,
करते हुए लोग लेटकर परिक्रमा करते हैं। मठ-मन्दिरोंके	रासलीला तथा अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं। सबमें
दर्शन करते हुए लोग चलते हैं। परिक्रमाके पाँच प्रमुख	समरसता मिलती है। सुन्दर मेले और प्रदर्शनियोंका
द्वार हैं। मुख्य द्वारपर कामतानाथजी हैं।	आगमन होता है। मथुरा-वृन्दावनकी रासलीला तथा
मन्दाकिनी नदीकी दशा आज अच्छी नहीं है।	देशके कोने-कोनेसे लोककलाके विशेषज्ञोंकी टोलियाँ
जिस पवित्रताका वर्णन पुराणों तथा अन्य साहित्यमें	आती हैं। भारत सरकारका सांस्कृतिक मन्त्रालय पूर्ण
है—वह आज कत्तई नहीं है। धर्मप्राण जनता उसमें	सहयोग करता है। लोहियाद्वारा प्रवर्तित रामकथा चलती
स्नान करती है। दीपक जलाकर तैराती है, आरती करती	है। उनका सपना था कि रामकथासे विश्व-मानवको
है। दीपावलीपर दीप जलाने (धारामें) और आरतीका	जोड़ा जा सकता है। दो विश्वविद्यालय तथा अन्य
विशेष महत्त्व है। घाटकी सीढ़ियोंपर भी दीपमालाएँ	विद्यालय-महाविद्यालय चलते हैं।
सजायी जाती हैं। ऐसी अवधिमें घाटों और नदीकी शोभा	सबके उपरान्त ढाकमें तीन पात ही रह गये।
निराली हो जाती है। आजका चित्रकूट अतीत और	सृष्टिके विकाससे आजतकके मूल निवासी अपनी
वर्तमानका महासंयोग है। ऋषि भारद्वाज और वाल्मीकिने	झुग्गी-झोपड़ी या खपरैलके मकानसे छोटी कुल्हाड़ी
रामको स्थायी निवासके लिये चित्रकूटको बताया था।	और डण्डा लेकर प्रायः स्त्रियाँ और सयानी लड़िकयाँ
इससे स्पष्ट होता है कि इसकी महिमा सतयुगसे स्थापित	जंगलकी ओर निकल जाती हैं। दोपहरतक जंगलसे
है। चित्रकूटकी पहाड़ियाँ बहुत पुरानी हैं। कामतानाथ	लकड़ियोंका बोझ लिये लौटती हैं। दरवाजेपर रखकर

नहाती-खाती और सायं बाजारमें लकड़ी बेचती हैं, कुछ और उनकी उड़ानोंपर यह गम्भीर होकर सोचता है कि घूमकर, कुछ दरवाजेपर। रात गयेतक वे खाने-पीनेकी मूल रूप क्या है ? सबका कामदिगिरि सबसे दृढ़ साक्षी

भाग ९४

किसीसे क्या लेना-देना है? यह तो फक्कड़ अवध्रत

यही तो देवत्वप्रदायिनी शक्ति है, वरना पाषाण तो

तथा अन्य आवश्यक सामग्री खरीदती हैं। है। आज यह कहता है कि सबको तुम अपनी विद्यासे ठग सकते हो, पर मुझको नहीं। यह स्थिर, दृढ़, राम भी सबेरे निकल जाते, दिनभर बाहर रहते और प्रत्यक्षदर्शी, निष्पक्ष साक्षी और मौन वक्ता है। इसको सायं लौटकर कामदगिरिपर आते थे। अध्यात्म, भक्ति,

है, जिसके सामने सभी दाताओंके सिर झुक जाते हैं, वे किया जाय, पर रामका वनवासकाल महान् दु:खदायी याचक हो जाते हैं। इसीसे चित्त बार-बार चित्रकूट धाम जाने और कामदगिरिकी परिक्रमा करनेके लिये

भी जंगलकी भूमिपर नंगे पाँव चलना महान् कष्टकारक है। कंकरीली, ऊबड़-खाबड़ भूमि, नदी-नालोंके प्रकोप, व्यग्र रहता है। यह है तो पाषाणसमूह, परंतु इसमें देवत्व है, अपने इतिहास, संस्कृति और भावधाराको

हिंसक पशुओं और जीव-जन्तुओंके संकट, वर्षा, धूप,

गर्मी और शीतके प्रकोप भोगते रहे। गुरुखुल, कुश, सँजोकर रखने और योग्य पात्रको बाँटनेकी शक्ति है,

कंटक, पत्थरसे आवृत धरतीपर चलते रहे। चित्रकृटका

माया और नरलीलाके नामपर चाहे जो रूपक तैयार

था। तब चित्रकूट बिलकुल बीहड् क्षेत्र रहा होगा। आज

गुरुखुल यदि एक बार चुभ जाय तो उसकी असह्य पीड़ा पाषाण। इसी गुणके कारण यह आज भी पूज्य है। कभी नहीं भुलायी जा सकती है। पृथ्वीपर एक पुरुष लोग चलकर ही नहीं, छः किलोमीटरकी लेटकर भी और एक स्त्रीको जितने दु:ख मिल सकते हैं, वे सभी परिक्रमा करते हैं। बाल, वृद्ध और युवा सभी नंगे पाँव चलते हैं। बिना कुछ मिले ऐसा एक-दो कर सकते हैं, राम-लक्ष्मण और सीताको इस अवधिमें मिले।

पर अनेक तो नहीं कर सकते हैं? सबको चित्रकूटने देखा है। कलियुगी कल्पनाओं 'सेइये सनेहसों बिचित्र चित्रकूट सो'

### जहाँ बन् पावनो सुहावने बिहंग-मृग, खेत-खूँट-सो। अति लागत

अनंदु सीता-राम-लखन-निवास्, मुनिनको, बासु बिबेक-बूट-सो॥ सिद्ध-साधु-साधक सबै

झारि सीतल पुनीत बारि, महेसजटाजुट-सो। मंजुल

जौं रामसों सनेहु साँचो चाहिये तौ,

सनेहसों बिचित्र चित्रकूट सो॥ जहाँका वन अति पवित्र है और पशु-पक्षी अत्यन्त सुहावने हैं तथा जिसे खेतके टुकड़ेके समान

(हरा-भरा) देखकर बड़ा आनन्द होता है, जहाँ सीता, राम और लक्ष्मणका निवास था, जहाँ अनेकों मुनिजन रहते हैं तथा जो सिद्ध, साधु और साधकोंके लिये विवेकरूपी वृक्षके समान है; जहाँ सभी

झरनोंसे अति शीतल और पवित्र जल झरता रहता है तथा मन्दािकनी नदी श्रीमहादेवजीके जटाजूटके समान जान पड़ती है। तुलसीदासजी कहते हैं—यदि तुम्हें भगवान् रामके सच्चे स्नेहकी चाह है, तो

भेसामूर्वाचां इक्षा-द्वापं इक्षान् क्षान् क्षान् प्रमासक हो // ब्राज्या क्षान्य | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

संख्या ७ ] महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र संत-चरित— ( श्रीरामलालजी श्रीवास्तव ) भगवती कावेरीके तटका अधिकांश क्षेत्र महात्मा हो उठे; सदाके लिये उन्होंने मौन धारण कर लिया। वे सदाशिव ब्रह्मेन्द्रकी आध्यात्मिक साधना और तपस्यासे 'मौनयोगी के नामसे प्रसिद्ध हो गये। वे ब्रह्मचिन्तन और गौरवान्वित है। वे अपने समयके महान् अध्यात्मवादी ग्रन्थ-रचनामें लग गये। उनकी 'आत्मविद्याविलास' थे, बहुत बड़ी आध्यात्मिक शक्ति थे। वे जन्मजात विरक्त नामकी रचनाने शृंगेरी मठके शिवाभिनवसच्चिदानन्द और परम तपस्वी थे। उन्होंने कुम्भकोणम्के निकट भगवती नृसिंह भारतीका उन्हें कृपापात्र बना दिया। दण्ड और कावेरीके तटपर स्थित तिरुविशनल्लुर ग्रामको अपनी कमण्डलुका परित्यागकर महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र अवधूत पवित्र स्थितिसे धन्य किया था। इस गाँवको तंजौरके हो गये, वे समाधिमें मग्न रहने लगे। मराठा शासक शाहजीने छियालीस विद्वानोंको शाहजीपुरम्के एक समयकी बात है, वे एक खेतकी मेंडको तिकया बनाकर उसपर सिर रखकर आत्मिचन्तन कर रहे नामसे प्रदान किया था। उपर्युक्त विद्वानोंमें मोक्ष सोमसुन्दर अवधानी भी एक थे, जो सदाशिव ब्रह्मेन्द्रके पिता थे। थे। खेतिहरोंने उनको इस स्थितिमें देखकर व्यंग्य किया ये सात्त्विक स्वभावके व्यक्ति थे। सदाशिव ब्रह्मेन्द्रकी कि 'यद्यपि इन्होंने विषयासक्तिका पूर्ण त्याग कर दिया है, तथापि आराममें इनकी आसक्ति बनी हुई है।' यह माताका नाम पार्वती था। सदाशिव ब्रह्मेन्द्रका बचपनसे ही विद्यामें अनुराग था। बाल्यावस्थामें ही उनका विवाह बात उन्हें लग गयी। खेतिहर तो चलते बने, पर सदाशिव कर दिया गया था। पत्नीके घर आनेपर उन्हें गुरुकुलसे ब्रह्मेन्द्र मेंड्का आश्रय छोड्कर ही आराम करने लगे। बुलाया गया। उनकी अवस्था उस समय इक्कीस सालकी सिर हवाके आधारपर जमीनसे थोड़ा ऊपर स्थित था। थी। घरमें वधूके आगमनका उत्सव मनाया जा रहा खेतिहरोंने लौटते समय उनको इस हालतमें देखकर था। उस दिन सदाशिव ब्रह्मेन्द्रको भोजनके पहले उपवासका उनके यौगिक प्रदर्शनकी भर्त्सना की। महात्मा सदाशिव आदेश दिया गया था। भोजनमें विलम्ब होते देखकर ब्रह्मेन्द्र सावधान हो गये। वे अवधूतवेषमें चल पड़े, उनके मनमें विचार उठने लगा कि निस्संदेह वैवाहिक योगसाधनाका भी उन्होंने परित्याग कर दिया। वे जीवन परम दु:खमय है। अभी इसका आरम्भमात्र है, दिगम्बर हो उठे। शरीरपर न वस्त्र था, न रहनेके लिये पर मुझे भोजनतकके सम्बन्धमें विलम्ब सहना पड रहा घर था। अनायास खानेके लिये जो कुछ भी मिल जाता, है। वे तत्काल सावधान हो गये। उनके मनमें वैराग्य उसे कररूप पात्रमें लेकर खा लिया करते थे। वे उमड पडा। उन्होंने सोचा कि परमात्माकी खोजमें लग ब्रह्मोन्मादकी स्थितिमें इधर-उधर विचरण करने लगे। जाना ही जीवनकी सार्थकता है। वे गुरुकी खोजमें निकल अपनी इस अवस्थाका विवरण पड़े। उन्होंने कांचीपुरम्में कामकोटि मठके स्वामी 'आत्मविद्याविलास' ग्रन्थमें प्रस्तुत किया है। परमशिवेन्द्रसे दीक्षा लेकर गेरुआ वस्त्र धारणकर संन्यास-किंचित् संततमनुसंदधन्महामौनी। आन्तरमेकं आश्रममें प्रवेश किया। करपुटभिक्षामश्नन्नटति हि वीथ्यां जराकृतिः कोऽपि॥ महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्रके गुरु परमशिवेन्द्रके संसारके प्रति पूर्ण अनासक्त होकर उन्होंने नैराश्यसे स्थानपर अध्यात्मज्ञानकी पिपासाकी शान्तिके लिये संत-अपने आपको अलंकृत कर लिया। उनकी चित्तवृत्ति महात्मा दूर-दूरसे आया करते थे। सदाशिव ब्रह्मेन्द्र उनसे शान्त हो गयी, पेड़ोंके नीचे ही उन्होंने विश्रामस्थल बना वाद-विवादमें प्राय: उलझ जाया करते थे। परमशिवेन्द्रको लिया। वे निर्जन नदीके कुंजस्थलमें पुलिनरूप तल्पपर शयन करने लगे, वायु उनके लिये पंखा बन गयी तथा यह बात पसन्द नहीं थी। एक दिन उन्होंने उलाहनेके स्वरमें शिष्यको सम्बुद्ध किया, 'तुम बोलना कब बन्द पूर्णचन्द्र ही उनके लिये दीपक था। यह थी उनकी करोगे ?' गुरुके कृपामय शब्द थे। वे तत्काल ही सजग ब्रह्मानन्दमयी अवस्था। 'आत्मविद्याविलास' में उनकी

भाग ९४ प्राप्त सिद्धि और प्रदर्शनसे बहुत दूर रहते हैं, तथापि इस दिगम्बर स्थितिका वर्णन उपलब्ध होता है— आध्यात्मिक साधनाके फलस्वरूप उनके भीतर विद्यमान आशावसनो मौनी नैराश्यालंकृतः शान्तः। तेज तो लोगोंको प्राय: प्रभावित करता ही रहता है। एक करतलभिक्षापात्रस्तरुतलनिलयो मुनिर्जयति॥ विजननदीकुञ्जगृहे मञ्जुलपुलिनैकमञ्जुतरतल्पे। समयकी बात है—कुछ लोग खेतमें धान काटकर बोझा शेते कोऽपि यतीन्द्रः समरससुखबोधवस्तुनिस्तन्द्रः॥ बनाकर रख रहे थे। रातका समय था। अँधेरी रात थी। महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र किसी ओरसे विचरण करते उधर भूतलमृदुतरशय्यः शीतलवातैकचामरः शान्तः। ही आ पहुँचे और बोझेसे टकराकर जमीनपर गिर पड़े। राकाहिमकरदीपो राजित यतिराजशेखरः कोऽपि॥ खेत काटनेवालोंने उनको चोर समझा। मारनेके लिये हाथ यतिराजशेखर सदाशिव ब्रह्मेन्द्र जड़की तरह, बहरे और भूताविष्टकी तरह परमात्मामें लीन होकर इधर-उठाये ही थे कि हाथ उठे-के-उठे ही रह गये। दूसरे दिन उधर विचरते रहते थे। उन्हें लोग पागल समझते थे, पर प्रभातकालमें खेतका स्वामी आया। खेत काटनेवालोंने उनके गुरु महात्मा परमशिवेन्द्रको अपने शिष्यकी वास्तविक उसे सारी बात बता दी। महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्र रातसे ही समाधिस्थ थे। प्रात: समाधिसे जागनेपर वे बिना किसीसे दशाका ज्ञान था। वे खेद प्रकट करते थे कि 'मेरे हृदयका परिपाक ऐसा नहीं हो सका; मुझे इस तरहकी बातचीत किये ही वहाँसे चल दिये। खेत काटनेवालोंके ब्रह्मोन्मादकी प्राप्ति नहीं हो सकी।' हाथ भी पहलेकी तरह स्वस्थ हो गये। संतसे किसीके अहितकी सम्भावना ही नहीं रहती। उन्मत्तवत्संचरतीह शिष्य-वे तो सदा मंगलस्वरूप होते हैं। साथ-ही-साथ बात भी स्तवेति लोकस्य वचांसि शृणवन्। सच है कि यदि उनके प्रति कोई अपराध कर बैठता है खिद्येत वा चास्य गुरुः पुराहो ह्युन्मत्तता मे नहि तादृशीति॥ तो दैवी विधानसे उसे दण्ड मिलता है। संत स्वयं महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्रकी अवधूत-अवस्था अत्यन्त किसीको दण्ड नहीं देना चाहते, वे तो राग-द्वेषसे नितान्त विलक्षण थी। कभी तो वे वनोंमें विश्राम करते थे, तो कभी परे होते हैं। एक समयकी घटना है, सदाशिव ब्रह्मेन्द्र भगवती कावेरीके तटपर शिलाकी तरह जडीभूत अवस्थामें एक वनप्रान्तमें विचरण कर रहे थे। उन्मत्त अवस्था थी, समाधिस्थ रहते थे। एक समयकी बात है, वे त्रिमूर्ति-शरीर हृष्ट-पुष्ट था। किसी उच्च राजकर्मचारीके घरपर क्षेत्रमें कावेरीके परम रमणीय तटपर कोडमुडी स्थानपर ईंधनके उपयोगके लिये उसी जंगलमें कुछ लोग जलानेकी विश्राम कर रहे थे। सहसा उनकी समाधि लग गयी। वे लकड़ी काट रहे थे। उन्होंने लकड़ीका बोझा सदाशिव बालुके एक टीलेपर आसनस्थ थे। अचानक कावेरीमें ब्रह्मेन्द्रके सिरपर रख दिया, महात्मा गाँवकी ओर चल बाढ़ आ जानेपर लोगोंने समझा कि वे पानीके साथ कहीं पड़े। राजकर्मचारीके निवास-स्थानपर पहलेसे ही कुछ लकड़ी एकत्र थी। ज्यों ही महात्माने अपने सिरकी बह गये। तीन-चार मासके बाद एक किसान नदी-तटसे बालू लाने गया। उसने फावड़ा चलाया ही था कि उसे लकड़ी उतारकर उस ढेरमें रखी, त्यों ही आग लग रक्तरंजित देखकर वह आश्चर्यमें पड़ गया। उसने धीरे-गयी। सारी लकड़ी जल गयी। महात्माने विलक्षण मस्तीमें अपनी राह पकड़ी। सन्त-महात्माकी सबसे बड़ी धीरे फावड़ा चलाया और सदाशिव ब्रह्मेन्द्रकी समाधि ट्रट गयी। वे उठ खड़े हुए और बिना किसी मानसिक अशान्तिको सेवा यह है कि उनके प्रति किये गये प्रत्येक व्यवहारमें प्रकट किये ही वे दूसरी दिशाकी ओर चल पड़े; ऐसा हम पूर्ण सावधान और सचेत रहें तथा इस बातका सदा लगता था कि कुछ हुआ ही नहीं है। निस्संदेह जो व्यक्ति ध्यान रखें कि अपनी असावधानीसे हम उनके प्रति

अपने जीवनमें ब्रह्मानन्दका रसास्वादन कर लेता है, उसके रंचमात्र भी अपराध न कर बैठें। लिये जागतिक प्रपंचका रंचमात्र भी महत्त्व नहीं रह जाता। सन्त सबकी सन्तुष्टिका ध्यान रखते हैं। अपने जनको यद्यपि संत आध्यात्मिक चमत्कार तथा अनायास सन्तुष्टि प्रदानकर वे स्वयं सन्तुष्ट होते हैं, यह उनका

- · ·	इाशिव ब्रह्मेन्द्र ३७				
*******************************					
स्वभाव है। वे भेदभावसे कोसों दूर रहते हैं। दूसरोंको	उन्होंने अपने गुरुकी कृपाके प्रकाशमें ही				
प्रसन्न रखनेके लिये वे सदा सचेष्ट रहते हैं।	परमात्मचिन्तन किया है। 'आत्मविद्याविलास' ग्रन्थमें				
एक समयकी बात है, सदाशिव ब्रह्मेन्द्र उन्मत्त-	उनकी कृतज्ञता-विज्ञप्ति है अपने गुरुके प्रति—				
अवस्थामें विचरण कर रहे थे। छोटे-छोटे बालकोंने उनको	निरवधिसंसृतिनीरधिनिपतित जनतारणस्फुरन्नौकाम्।				
घेर लिया। वे भी लड़कोंका मन बहलाने लगे। बालकोंने	परमतभेदनघुटिकां परमिशवेन्द्रार्यपादुकां नौमि॥				
आग्रह किया—'महाराज!मदुराके मन्दिरमें आज भगवान्	(आत्मविद्याविलास, २)				
सुन्दरनाथका बड़ा सुन्दर शृंगार होनेवाला है। हम महेश्वरका	इसी तरह ब्रह्मसूत्र-वृत्तिके समापनमें वे कहते हैं—				
दर्शन करना चाहते हैं।' बालहठके सामने महात्माको नत	'कहाँ तो मैं अल्पायु बालक और कहाँ वेदान्तका यह				
होना पड़ा। उन्होंने अनेक बालकोंको अपने सिर और	गहन मार्ग! परमशिवेन्द्रकी कृपासे मैं वेदोंके तात्पर्यको				
कन्धोंपर बिठाकर आँख मूँदनेको कहा। बालकोंको लिये-	जानकर उपनिषदोंकी व्याख्या करनेमें समर्थ हुआ हूँ '—				
दिये वे बात-की-बातमें मदुरा पहुँच गये। बालकोंने वृषभकी	जडः क्वाहं बालः क्व च गहनवेदान्तसरणि-				
पीठपर विराजमान भगवान् सुन्दरनाथका शृंगारयुक्त दर्शन	स्तथाप्याम्नायार्थं परमशिवयोगीन्द्रकृपया।				
किया। संतने बालकोंको प्रसाद दिलवाया। शृंगार-महोत्सव	विजानन् व्याख्यानं व्यरचयमहं वेदिशिरस-				
समाप्त होनेपर महात्मा सदाशिव ब्रह्मेन्द्रने पहलेकी ही	स्तदेतत्क्षन्तव्यं मयि सदयदृष्ट्या बुधजनै:॥				
तरह बालकोंको अपने स्थानपर पहुँचा दिया।	(ब्रह्मतत्त्वप्रकाशिका, अन्तिम श्लोक)				
दक्षिण भारतके श्रेष्ठ राजयोगियोंमेंसे वे एक थे।	'आत्मविद्याविलास' सदाशिव ब्रह्मेन्द्रकी अत्यन्त				
उन्होंने महर्षि व्यासके ब्रह्मसूत्रमें निरूपित ब्रह्मको अपनी	मौलिक कृति है। उन्होंने बारह उपनिषदोंपर भी अपने				
आध्यात्मिक साधनाका प्राण स्वीकार किया। उन्होंने	विचार 'दीपिका' टीका लिखकर व्यक्त किये हैं।				
ब्रह्मसूत्रपर महत्त्वपूर्ण 'ब्रह्मतत्त्वप्रकाशिका' नामकी विवृति	ब्रह्मसूत्रपर उनकी 'ब्रह्मतत्त्वप्रकाशिका वृत्ति' बड़ी उपादेय				
प्रस्तुत की, जिसमें उनके ब्रह्मचिन्तनकी प्रक्रियापर यथेष्ट	है। कहा जाता है कि पतंजलिके योगसूत्रपर भी उन्होंने				
प्रकाश मिलता है। अपने गुरुके चरणोंमें उनकी अद्भुत	'योगसुधाकर' नामका भाष्य लिखा था। उनके गुरु				
निष्ठा थी; अपने ब्रह्मचिन्तनको वे स्वगुरुनिष्ठाका परम	परमशिवेन्द्रने उपनिषदोंसे ब्रह्मपरक शब्दोंको				
फल मानते थे।'सिद्धान्तकल्पवल्लीमें' सदाशिव ब्रह्मेन्द्रकी	'वेदान्तनामसहस्रव्याख्या' के नामसे संकलित किया				
स्वीकृति है—	था। सदाशिव ब्रह्मेन्द्रने इस संकलनको छत्तीस श्लोकोंमें				
यदपांगतः प्रबोधो भवदुःस्वप्नावसानकरः।	'आत्मानुसन्धान' नामसे संक्षिप्त किया था। अप्पय्य				
तमहं परमशिवेन्द्रं वन्दे गुरुमखिलतन्त्रजीवातुम्॥	दीक्षितने 'वेदान्तसिद्धान्त-लेश-संग्रह' में वेदान्तसिद्धान्त-				
(सिद्धान्तकल्पवल्ली, ३)	रत्नोंका विस्तारसे संग्रह किया। योगिराज सदाशिव				
'जिनके कृपाकटाक्षसे संसाररूप दु:स्वप्नका अन्त	ब्रह्मेन्द्रने 'सिद्धान्तकल्पवल्ली' नामसे दो सौ चौदह				
हो जाता है तथा आत्मसाक्षात्कार सहज-सुलभ हो	आर्याओंमें उन सिद्धान्तोंको संक्षिप्त किया।				
जाता है, समस्त शास्त्रोंको नया जीवन देनेवाले उन	कहा जाता है कि यतिराजशेखर सदाशिव ब्रह्मेन्द्र				
परमशिवेन्द्र गुरुको मैं नमस्कार करता हूँ।'	पृथ्वीपर दो सौ सालतक विराजमान रहे। ज्येष्ठ शुक्ला				
उन्होंने निष्कल-निर्गुण, शुद्ध-बुद्ध परमात्माके	दशमीको भगवती कावेरीके तटपर करूरके निकट नेरूर				
चिन्तनमें कहा है—	नामक स्थानमें उन्होंने महासमाधि ली। निस्संदेह वे				
निरुपमनित्यनिरीहो निष्कल निर्मायनिर्गुणाकारः।	जन्मजात सिद्ध थे। वे सदा सिच्चदानन्दस्वरूप परमात्माके				
विगलितसर्वविकल्पः शुद्धो बुद्धश्चकास्ति परमात्मा॥	चिन्तनमें तल्लीन रहकर विश्वातीत हो उठे।				
	<del></del>				

मानव-जीवनमें सुख और दुःख (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

किसी भी कर्मके फलरूपमें प्राप्त परिस्थित और है। जिसके जीवनमें प्रतिकूलताका अनुभव नहीं होता,

भोगसमुदायमें राग नहीं करना चाहिये; क्योंकि जिस उसकी उन्नतिकी ओर प्रगति नहीं होती। यदि प्रतिकूल

प्राप्त पदार्थमें मनुष्यका राग होता है, उसी जातिके परिस्थित पैदा न होती तो शरीर और संसारसे अहंता-

अप्राप्त पदार्थोंका चिन्तन होता है तथा उनके संस्कार

अंकित होकर वासनाका रूप धारण कर लेते हैं। उससे

अन्त:करण मलिन होता रहता है।

राग यानी आसक्ति, द्वेष यानी वैरभाव—इन दोनोंका

समूल नाश करनेके लिये साधकको चाहिये कि इन्द्रिय-

ज्ञानके अनुसार अनुकूल और प्रतिकूल प्रतीत होनेवाली

परिस्थितियोंकी प्राप्तिमें जो सुख और दु:ख होता है, उनमें

किसी दूसरेको कारण न समझे। दूसरे व्यक्तियोंको, क्षुद्र

जीवोंको या पदार्थोंको सुख-दु:खका कारण मान लेनेपर उनमें आसक्ति और वैरभाव होना अनिवार्य है। जबतक

मनुष्यका किसी व्यक्तिमें या पदार्थमें राग-द्वेष विद्यमान रहता है, तबतक चित्त शुद्ध नहीं होता। उसके मनमें

अनावश्यक संकल्प और व्यर्थ चिन्तन होता रहता है। वास्तवमें यदि देखा जाय तो सुख-दु:खमें दूसरा व्यक्ति,

प्राणी या पदार्थ हेतु हैं भी नहीं। कोई पूछे कि कौन हेतु है, तो इस विषयकी मान्यता तीन भागोंमें बाँटी जा सकती है—

(१) यह कि पूर्वकृत अच्छे और बुरे कर्मीं के फलरूपमें ही समस्त प्राणियोंको अनुकूल और प्रतिकूल

भोग प्राप्त होते हैं। दूसरा कोई कारण नहीं है। यह मान्यता तो उन मनुष्योंकी होती है, जो देहाभिमानी और कर्मासक्त हैं। अपनी इस मान्यताके अनुसार उनका बुरे

कामोंको छोडकर, अच्छे कर्मोंमें प्रवृत्त होनेका निश्चय

दृढ़ होता है, जो उनको उन्नतिशील बनानेमें सहायक होता है। इसलिये यह मान्यता भी एक प्रकारसे अच्छी है।

(२) सुख और दु:खकी प्राप्तिका कारण एकमात्र मनुष्यका प्रमाद अर्थात् प्राप्त विवेकका आदर न करना

यानी उसका सदुपयोग न करना ही है, दूसरा कुछ नहीं;

क्योंकि विचारवान् साधकको जब किसी प्रकारकी शारीरिक या मानसिक प्रतिकूलता प्राप्त होती है, तब वह उससे दुखी नहीं होता, बल्कि यह समझकर प्रसन्न रहता

िभाग ९४

ममताका दुर होना प्राय: सम्भव ही नहीं था। अत: प्रतिकूल परिस्थिति तो शरीर और संसारसे अलग करनेवाली है। जब शरीरमें अहंभाव और उससे सम्बन्धित

जगत्में मेरापन न रहे, तब कोई भी परिस्थिति मनुष्यको सुख या दु:ख देनेवाली हो ही नहीं सकती। यह मान्यता उन विचारशील साधकोंकी होती है, जो एकमात्र

प्रमादको ही अहंता-ममताका हेतु समझकर अपने प्राप्त विवेकका आदर करनेवाले हैं।

(३) तीसरी मान्यता हर-एक परिस्थितिमें सर्वत्र और सर्वदा भगवानुकी कृपाका दर्शन करनेवाले, भगवानुपर निर्भर परमविश्वासी भक्तोंकी होती है। वे अनुकूल परिस्थितिमें तो इस भावनासे भगवान्की अहैतुकी कृपाका अनुभव

करके उनके प्रेममें विभोर हो जाते हैं कि वे परम सुहृद् प्रभु मेरी हर-एक आवश्यकताका कितना अधिक ध्यान रखते हैं। मुझ-जैसे अधम प्राणीपर भगवानुकी कितनी दया है, जो अपनी सेवा कराकर मुझे अपना प्रेम प्रदान करनेके

लिये यह सामग्री और इनके उपयोगकी योग्यता दी है एवं प्रतिकूल परिस्थिति प्राप्त होनेपर वे यह सोचते हैं कि इस शरीरमें और संसारमें जो मैंने प्रमादवश सुख मान लिया था, जिसके कारण मैं अपने परम सुहृद् प्रभुसे विमुख हो

आकर्षित करनेके लिये भगवान्ने कृपापूर्वक यह परिस्थिति दी है। भगवानुकी कैसी अनुपम दया है कि वे अपने दासको हर समय हर-एक प्रकारसे अपना प्रेम प्रदान करनेके लिये उत्सुक रहते हैं। इस प्रकार प्रभुकी कृपाका

रहा था, उस शरीर और संसारसे विमुख करके अपनी ओर

अनुभव करता हुआ उनके प्रेममें विभोर होता रहता है। उपर्युक्त तीनों प्रकारकी ही मान्यता अपने-अपने अधिकारके अनुसार प्राणीको उन्नतिशील बनाती है। इसके विपरीत जो दूसरे प्राणियोंको या पदार्थोंको अपने

सुख और दु:खका हेतु मानता है, उसका सब प्रकारसे हे सिंग प्रेसांक्रूल ती व्हिंट वासुके केट प्राधान की ती कि प्रमाण की ती है, एक्ट में की पर्पायक की ती है एक्ट में कि पर्पायक में कुछ से कि प्रमाण की ती है है कि प्रमाण की ती है कि प्रम अपने सुखमें हेत् मान लेता है, उसमें उसका राग हो जाता प्रारब्धको या प्रमादको अथवा भगवानुकी अहैतुकी कृपाको है और जिसको दु:खका हेतु मानता है, उससे द्वेष हो मान लेता है, तब उसका दोनों प्रकारकी परिस्थितियोंमें जाता है। ये राग और द्वेष मनुष्यको उन प्राणी-पदार्थींक भेद-भाव नहीं रहता। उसके लिये अनुकूल परिस्थितिके चिन्तनमें लगाकर मनको मलिन और विक्षिप्त कर देते हैं। समान ही प्रतिकृल परिस्थिति भी प्रसन्नता और विकासका कारण बन जाती है। साधक भोगसे योगकी ओर, मृत्युसे

आकर्षित हो जाता है।

अमरताकी ओर तथा राग-द्वेषसे त्याग और प्रेमकी ओर

'विरक्त' बनानेमें समर्थ है, जिससे प्राणीका हित ही होता

है। जो प्राणी सुख मिलनेपर उसके उपभोगमें लोलूप हो

जाता है और दु:ख आनेपर भयभीत हो जाता है, वह

बेचारा सुख-दु:खका सदुपयोग नहीं कर पाता, जिसका

प्रकारसे उपयोग करना साधकके लिये परम आवश्यक

है। सुख-दु:खके उपयोगयुक्त जीवनको जीवन मान

लेना भूल है। जीवन तो वास्तवमें वह है, जिसका

अनुभव सुख-दु:खसे रहित होनेपर होता है।

सुख-दु:खमें साधन-बृद्धि करके उनका उपर्युक्त

न करना वास्तवमें अवनतिका मूल है।

उपर्युक्त भावनासे सुख 'उदार' बनानेमें और दु:ख

लक्ष्मीका वास कहाँ है ?

अतः उसको किसी भी समय शान्ति नहीं मिलती। जब साधकका किसी प्राणीमें वैरभाव—द्वेष नहीं रहता, तब सबमें समानभावसे प्रेम हो जाता है।आसक्ति और

संख्या ७ ]

स्वार्थको लेकर जो प्राणियोंमें प्रियता होती है, वह प्रेम नहीं है, वह तो मोह है। अत: वह प्रियता, जिस-जिस व्यक्ति या पदार्थमें ममता होती है, वहीं होती है। विभू नहीं होती।

उसमें द्वेषका अभाव नहीं होता। परंतु जो द्वेषका समूल नाश होनेपर समभावसे सबमें प्रेम होता है, वह विशुद्ध प्रेम है।

उसमें किसीसे कुछ लेना नहीं रहता। अत: वह प्रेम देखनेमें प्राणियोंके साथ होनेपर भी वास्तवमें भगवान्में ही है। शास्त्रोंमें जो सुख-दु:खको समान समझनेकी बात कही जाती है, उसका भी यही भाव मालूम होता है कि

दोनोंका एक ही नतीजा हो। परिणाममें भेद न हो। उपर्युक्त

प्रकारसे जब साधक सुख-दु:खका कारण दूसरेको न मानकर

लक्ष्मीका वास कहाँ है?

# एक सेठ रात्रिमें सो रहे थे। स्वप्नमें उन्होंने देखा कि लक्ष्मीजी कह रही हैं—'सेठ! अब तेरा पुण्य समाप्त

हो गया है, इसलिये तेरे घरसे मैं थोड़े दिनोंमें चली जाऊँगी। तुझे मुझसे जो माँगना हो, वह माँग ले।' सेठने कहा—'कल सबेरे अपने कुटुम्बके लोगोंसे सलाह करके जो माँगना होगा, माँग लूँगा।'

सबेरा हुआ। सेठने स्वप्नकी बात कही। परिवारके लोगोंमेंसे किसीने हीरा-मोती आदि माँगनेको कहा, किसीने स्वर्णराशि माँगनेकी सलाह दी, कोई अन्न माँगनेके पक्षमें था और कोई वाहन या भवन। सबसे अन्तमें

सेठकी छोटी बहु बोली—'पिताजी! जब लक्ष्मीजीको जाना ही है तो ये वस्तुएँ मिलनेपर भी टिकेंगी कैसे? आप इन्हें माँगेंगे, तो भी ये मिलेंगी नहीं। आप तो माँगिये कि कुटुम्बमें प्रेम बना रहे। कुटुम्बमें सब लोगोंमें

परस्पर प्रीति रहेगी तो विपत्तिके दिन भी सरलतासे कट जायँगे।

सेठको छोटी बहुकी बात पसन्द आयी। दूसरी रात्रिमें स्वप्नमें उन्हें फिर लक्ष्मीजीके दर्शन हुए। सेठने प्रार्थना की—'देवि! आप जाना ही चाहती हैं तो प्रसन्ततासे जायँ; किंतु यह वरदान दें कि हमारे कुट्म्बियोंमें

परस्पर प्रेम बना रहे।' लक्ष्मीजी बोलीं—'सेठ! ऐसा वरदान तुमने माँगा कि मुझे बाँध ही लिया। जिस परिवारके सदस्योंमें परस्पर प्रीति है, वहाँसे मैं जा कैसे सकती हूँ। गुरवो यत्र पूज्यन्ते यत्राह्वानं सुसंस्कृतम्। अदन्तकलहो यत्र तत्र शक्र वसाम्यहम्॥

देवी लक्ष्मीने इन्द्रसे कहा—'इन्द्र! जिस घरमें गुरुजनोंका सत्कार होता है, दूसरोंके साथ जहाँ सभ्यतापूर्वक बात की जाती है और जहाँ मुखसे बोलकर कोई कलह नहीं करता (दूसरेके प्रति मनमें क्रोध आनेपर भी

जहाँ लोग चुप ही रह जाते हैं), मैं वहीं रहती हूँ।' [श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र']

संत-वचनामृत ( वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे ) 🕏 पापियोंके मनमें पाप, पुण्यवानोंके मनमें पुण्य चरित्र सुनाया और कहा—'ये देवकीनन्दन ही नृसिंह और भक्तोंके हृदयमें भगवान् प्रेरणा करते हैं। प्रभु-हैं।' श्रीकृष्णने कहा—'आप क्यों मेरे पेटपर लात मार प्रेरणासे मंगल-ही-मंगल होता है। अपने मनको जब हम रहे हैं। भाई-मित्र मानते हैं, तो साथ-साथ खिलाते-भगवान्से मिलाकर रखेंगे तब भगवान् प्रेरणा करेंगे। पिलाते हैं। ईश्वर मानेंगे तो अलमारीमें रखकर दो-चार बताशोंका भोग लगाकर शयन करा देंगे। इसलिये मित्र

भगवत्-प्रेरित भक्तके सभी कार्य दिव्य होंगे। रैदासजी प्रभुकी प्रेरणासे भगवान्की सेवा-पूजा करते थे तो प्रभुके मनमें रैदासकी कीर्ति बढ़ानेकी इच्छा हुई। काशीके विद्वान् ब्राह्मणोंने विरोध किया। यह भी प्रभुकी प्रेरणा थी। ब्राह्मणोंने राजासे शिकायत की। रैदासको राजदरबारमें बुलाया गया। रैदासजीने कहा प्रभु सेवा स्वीकार करते हैं। अपनी सेवाकी प्रेरणा प्रभुने दी है। सभामें सिंहासनपर प्रभु पधराये गये। राजाने कहा—'जो कोई अपनी प्रार्थनासे प्रभुको बुला लेगा, वह पूजाका अधिकारी होगा।'

पण्डितोंने मन्त्र पढ़कर बुलाया, पर प्रभु नहीं आये। रैदासकी प्रार्थना सुनकर उनके पास आ गये। उनकी वाणीमें दीनता थी। उन्होंने कहा कि प्रभो! आप हमसे अलग न होइये। या तो शीघ्र मेरे पास आ जाइये या मुझे अपने पास बुला लीजिये। मैं इस शरीरको त्याग करके

आपके पास आकर आपकी सेवा करूँ। सेवामें ही मुझे रखिये। सेवायोग्य शरीर दीजिये। प्रभु रैदासकी गोदमें आ गये। रैदासकी सभामें जय-जयकार हुई। राजा-प्रजाने रैदासको प्रणाम किया। रैदास सब कार्य प्रभुकी प्रेरणासे

करते थे, अतः प्रभुने रैदासका पक्ष लिया। 🕯 भक्तजन भगवानुको भगवानु मानकर ही भक्ति करते हैं। इसी तरह सन्तको सन्त मानकर उसकी भक्ति की जाती है। नहीं तो भगवान् और भक्तजन अपनेको

सर्वथा छिपाते रहते हैं, एक क्षण ऐश्वर्य—ईश्वरता दीख पड़ेगी, दूसरे क्षण भगवान् उसे छिपा लेते हैं। श्रीकृष्ण अर्जुन, युधिष्ठिर आदिके सामने अपनेको

होकर बादशाहने पूछा—'तूने ऐसा क्यों किया?' तब उसने कहा—छींट पड़ी, थोड़ा अपराध, भारी दण्ड।

संसारसे विरक्त रहते हैं। प्रभुकी इच्छा होती है तो वे लौकिक सम्पत्ति देकर लोकमें भक्तका सम्मान बढ़ाते हैं। 'करी गोपालकी सब होय। जो अपनौ पुरुषारथ मानै झूठो है सब सोय॥'

या भ्राता माननेसे मैं विशेष प्रसन्न रहता हूँ।'

🕸 श्रीप्रभुकी प्रसन्नताका फल है कि बुद्धि शुद्ध

रहे। विषयोंकी आशा न रहे। संसारी सम्पत्तिकी प्राप्ति—

यह रामजीकी कृपाका उत्तम फल नहीं है। भक्तजन

🔅 एक बादशाहका स्वभाव अति क्रूर था। थोड़े अपराधपर भारी दण्ड देता था। एक दिन भोजन परोसते समय रसोइयासे शाकका छींटा उसके पाजामेपर पड़ गया। बादशाह आग-बबूला हो गया, तब रसोइयाने सारा शाक उसके ऊपर उडेल दिया। क्रुद्ध

आप फाँसी देते तो लोग आपकी निन्दा करते, अत: मैंने अपराधको बड़ा कर दिया, आप फाँसी देंगे तो आपकी निन्दा न होगी। मेरी निन्दा होगी। यह सुनकर बादशाहने उससे शिक्षा ग्रहण की, स्वभावको बदल लिया। सच्चा सेवक स्वामीकी निन्दा नहीं चाहता,

स्वामीके स्वभावमें सेवककी निष्ठाने परिवर्तन किया। 🔹 सन्तोंसे, बड़ोंसे आशीर्वाद माँगना चाहिये, इससे दैन्य सुरक्षित रहता है। प्रेमीभक्त मात्र सप्रेम प्रणाम

बनकर रक्षा नहीं करेंगे।['परमार्थक पत्र-पुष्प'से साभार]

करते हैं, उन्हें बिना माँगे ही अभीष्टकी प्राप्ति हो जाती छिपाते थे। उनके साथ हँसने-बोलने, खाने-पीनेके है। प्रभु सबके स्वामी हैं, रक्षक हैं, पर जबतक हममें समयमें वे लोग अनुभव करते थे कि मेरे मित्र हैं, मेरे दास्य नहीं होगा, हम रक्ष्य न होंगे, तबतक वे स्वामी

भाई हैं। श्रीनारदजीने यज्ञके समय युधिष्ठिरको प्रह्लाद-

संख्या ७ ] गोमाताके प्रति कृतज्ञ भाव रखें गो-चिन्तन— गोमाताके प्रति कृतज्ञ भाव रखें ( श्रीअशोकजी कोठारी ) सनातन धर्म क्या है ? इसके सम्बन्धमें श्रीवाल्मीकीय भगवान् हैं। गाय साक्षात् भगवान् है, ये बात हमारे ध्यानमें आ जाय और ऐसा ध्यान करके गोसेवा की जाय रामायणके सुन्दरकाण्डमें पर्वतश्रेष्ठ मैनाक श्रीहनुमान्जीको सनातन धर्मका रहस्य समझाते हुए कहते हैं कि-तो भगवत्प्राप्ति हो जाय। लेकिन हमारे द्वारा गायके प्रति अपराध बनते जाते हैं, इसका कारण है कि हमारी 'कृते च प्रतिकर्तव्यं एष धर्मः सनातनः' अर्थात् जिसने हमारे प्रति किंचित् भी उपकार गायके प्रति पशुबुद्धि बनी रहती है, इसलिये सेवासे जैसा किया है, उसके प्रति सदा कृतज्ञ रहना—यही सनातन लाभ मिलना चाहिये, वह लाभ फिर नहीं मिल पाता। गोगव्य यदि सेवा-पूजामें नहीं है तो भगवान् सन्तुष्ट नहीं धर्म है। भगवानुकी सृष्टिमें गाय-जैसा कोई कृतज्ञ प्राणी हैं। बिना गायके गोविन्दका पूजन सम्भव नहीं है। नहीं है। जो प्रेमको स्वीकारकर उपकारका ऐसा उत्तर गोविन्दका वांछित गाय है। महाभारतके अनुशासन-दे, ६८ करोड़ तीर्थ एवं ३३ कोटि देवताओंका चलता-पर्वमें गोमाताकी महिमाके बारेमें कहा गया है-फिरता विग्रह गाय है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपर गायका जो गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किञ्चिदिहाच्युत॥ उपकार है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव। भगवान्के सम्बन्धमें यह बात कही जाती है कि शुक, गवां प्रशस्यते वीर सर्वपापहरं शिवम्॥ सनकादि, शेष, शारदा भी प्रभुके गुणोंका सांगोपांग गावो लक्ष्म्याः सदा मूलं गोषु पाप्मा न विद्यते। वर्णन करें, यह सम्भव नहीं है। उन श्रीभगवान्के अन्नमेव सदा गावो देवानां परमं हवि:॥ चरणोंमें प्रार्थना करें कि आप अपनी उपास्य देवता स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ। गोमाताके गुणोंका वर्णन करें, उनके उपकारोंको गिनायें गावो यज्ञस्य नेत्र्यो वै तथा यज्ञस्य ता मुखम्॥ तो सम्भवतया भगवान् भी गोमाताकी चरणरजको अमृतं ह्यव्ययं दिव्यं क्षरन्ति च वहन्ति च। मस्तकपर चढ़ाकर अश्रुप्रित नेत्रोंसे मूक रहकर ही अमृतायतनं चैताः सर्वलोकनमस्कृताः॥ गोमाताको महिमाका वर्णन करेंगे। ऐसी गोमाताकी गावः स्वर्गस्य सोपानं गावः स्वर्गेऽपि पूजिताः। महिमा है। वेदोंकी १३३१ ऋचाओंमें केवल गो-गावः कामदुहो देव्यो नान्यत् किञ्चित् परं स्मृतम्॥ अर्थात् च्यवन ऋषिने राजा नहुषसे कहा—अपनी महिमा है। पुराणोंमें, स्मृतियोंमें, सन्तोंकी वाणीमें गो-महिमा है। वेदसे लेकर पुराण, आगम, इतिहास-ग्रन्थ मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले हे राजेन्द्र! मैं इस और सन्तोंकी वाणियोंका विस्तृत गहन अध्ययन हो संसारमें गौओंके समान कोई धन नहीं देखता हूँ। वीर और गम्भीर चिन्तन-विचारपूर्वक समस्त उद्धरणोंको भूपाल! गौओंके नाम और गुणोंका कीर्तन तथा श्रवण एक जगह संकलित किया जाय, उनकी व्याख्या प्रस्तुत करना, गौओंका दान देना और उनका दर्शन करना— की जाय तो एक विशाल ग्रन्थ तैयार हो जायगा, इतनी इनकी शास्त्रोंमें बड़ी प्रशंसा की गयी है। ये सब कार्य गोमाताकी महिमा है! सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाले और परम कल्याणकी जबतक हमारी बुद्धिमें ये बात बनी रहेगी कि गाय प्राप्ति करानेवाले हैं। गौएँ सदा लक्ष्मीकी जड़ हैं। उनमें पशु है, तबतक ठीकसे सेवा नहीं बन पायेगी। सेवा सदा पापका लेशमात्र भी नहीं है। गौएँ ही मनुष्योंको सर्वदा सेव्यकी होती है, उपासना सदा उपास्यकी होती है और अन्न और हविष्य देनेवाली हैं। स्वाहा और वषट्कार सदा गौओंमें ही प्रतिष्ठित रहते हैं। गौएँ ही सदा यज्ञका उपासना, सेवा तब सम्भव है, जब सेव्यके प्रति, उपास्यके प्रति हमारी यह बुद्धि बन जाय कि ये साक्षात् संचालन करनेवाली तथा उसका मुख हैं। वे विकाररहित दिव्य अमृत धारण करनेवाली और दुहनेपर अमृत ही गवां दृष्ट्वा नमस्कृत्य कुर्यात्वेव प्रदक्षिणम्। देती हैं। वे अमृतकी आधारभूत हैं, सारा संसार उनके प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥ सामने नतमस्तक होता है। गौएँ स्वर्गकी सीढ़ी हैं, गौएँ मातरः सर्वभूतानां गावः सर्वसुखप्रदाः।

स्वर्गमें भी पूजी जाती हैं। गौएँ समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवियाँ हैं, उनसे बढ़कर कोई दूसरा नहीं है। ब्रह्मवैवर्तपुराणके श्रीकृष्णजन्म-खण्डमें भगवान्



श्रीकृष्ण नन्दबाबाको गौओंकी महिमा बताते हुए कहते हैं— सर्वे देवा गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च। तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः॥ गोष्पदाक्तमृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः। तीर्थस्नातो भवेत् सद्यो जयस्तस्य पदे पदे॥

प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम्॥

गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्तितम्।

अर्थात् गोमाताके शरीरमें समस्त देवगण निवास

करते हैं और गोमाताके चरणोंमें समस्त तीर्थ निवास करते

हैं। गोमाताके गुह्यभागमें लक्ष्मी सदा रहती हैं। गोमाताके

पैरोंमें लगी हुई मिट्टीका तिलक जो अपने मस्तकपर

लगाता है, वह तत्काल तीर्थजलमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त करता है और उसकी पद-पदपर विजय होती है। जहाँपर गौएँ रहती हैं, उस स्थानको तीर्थभूमि कहा गया

आजकी आवश्यकता है कि ऐसी हमारी पूज्य गोमाताके

करनेके लिये गोचर भूमिकी उदारतापूर्वक व्यवस्था करें, है। ऐसी भूमिमें जिस मनुष्यकी मृत्यु होती है, वह उन्हें कत्लखानोंमें जानेसे बचायें और उनके लिये चारे

उपवासोंमें जो पुण्य स्थित है, महादान देनेमें जो पुण्य

है, श्रीहरिकी पूजामें जो पुण्य है, पृथ्वीकी परिक्रमामें जो करनेसे जो पुण्य अर्जित होता है, वे सभी पुण्य केवल

गायोंको तृण खिलानेभरसे तत्क्षण ही मिल जाते हैं।

तीर्थस्नानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने। सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने। भुवः पर्यटने यत्तु वेदवाक्येषु यद्भवेत्॥

एवं सुख देनेवाली हैं। वृद्धिकी आकांक्षा करनेवाले मनुष्यको नित्य गौकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये।

वृद्धिमाकाङ्क्षता पुंसा नित्यं कार्याः प्रदक्षिणाः॥

गोमाताका दर्शन एवं नमस्कार करके उनकी परिक्रमा करे। ऐसा करनेसे सातों द्वीपोंसहित भूमण्डलकी प्रदक्षिणा हो जाती है। गौएँ समस्त प्राणियोंकी माताएँ

यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायां च लभेन्नरः। तत्पुण्यं लभते सद्यो गोभ्यो दत्वा तृणानि च॥ गोमाताको तृण खिलानेका बहुत ही पुण्य बताया

गया है। कहा है-तीर्थस्थानोंमें जानेसे, ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जो पुण्य होता है तथा सभी व्रतों और

पुण्य है तथा समस्त सत्य वाक्योंमें—शास्त्रीय वेदवाक्योंमें जो पुण्य है और मनुष्यको यज्ञोंमें यज्ञ-दीक्षा ग्रहण

आज त्रिलोकीमें गोमाताके अतिरिक्त ऋषि, मुनि, देव, मानवसहित ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जो अपनी नि:श्वासमें प्राणवायु (ऑक्सीजन) देता है। गोमाताके

मल-मूत्र पवित्र हो, ग्राह्य हो, पूजामें काम आता हो, गोमाताका गोबर, गोमूत्र, धरतीमाताका शुद्ध आहार है।

अतिरिक्त त्रिलोकीमें ऐसा कोई प्राणी नहीं है, जिनका

प्रति कृतज्ञभाव रखते हुए हम उनके चरने, विचरण

तकाल्यामुक्त छे। इंग्रजात है। हम्प्रका निक्तिता / वैsc.gg/dha निक्ति । प्राप्ति छा अर्था Avinash/Sha

साधनोपयोगी पत्र संख्या ७ ] साधनोपयोगी पत्र दे रखे हैं, सब उनके हैं, इन सबको उन्हींकी प्रेरणाके (१) जीवनको भगवत्परायण बनायें अनुसार जगत्-जनार्दनकी सेवामें लगा देना है। जिस महोदय! सादर हरिस्मरण, आपका पत्र मिला। शरीरको अबतक मैं अपना समझता था, वह भी उन्हींकी वस्तु है, इस दृष्टिसे इसका पालन-पोषण भी उन्हींकी समाचार ज्ञात हुए। आपने लिखा कि अब मैं संसारमें अकेला ही रह सेवाके अन्तर्गत है। मुझे अपने सुख-भोगके लिये कुछ गया हूँ, इसका यह भाव समझमें आया कि आपके भी नहीं चाहिये। मेरे तो एकमात्र भगवान् हैं और उनका प्रेम ही एकमात्र मेरा परम सुख और जीवन है। इस बाल-बच्चे और स्त्री आदि कोई नहीं रहे हैं; क्योंकि वैसे प्रकार संसारसे पूर्णतया निराश होकर एकमात्र प्रभुपर तो संसारमें कोई भी अकेला कैसे रह सकता है? अब बात यह है कि इस परिस्थितिमें आपको क्या निर्भर हो जाना, प्रत्येक परिस्थितिमें उनकी अहैतुकी कृपाका अनुभव करते हुए उनके प्रेममें विभोर रहना और करना चाहिये, यह आप जानना चाहते हैं। उसका उत्तर मैं अपनी समझके अनुसार लिख रहा हूँ। आप उचित भगवान्के प्रेरणानुसार उनकी वस्तुओंको उन्हींकी प्रसन्नताके समझें तो इसे काममें ला सकते हैं। लिये उनके काममें लगाते रहना तथा उसके बदलेमें (१) आपको यह मानना चाहिये कि 'भगवान्ने किसीसे भी किसी प्रकारके सुखभोगकी चाह न करना संसारका मोह छुड़ाकर मुझे अपनी ओर आकर्षित एवं किसी प्रकारका अभिमान भी नहीं करना—यह करनेके लिये विशेष कृपा करके मुझे यह परिस्थिति साधन बहुत ही अच्छा मालूम होता है। प्रदान की है। कुटुम्बके रहते हुए उन सबको अपना न काम-क्रोध आदि अवगुणोंके विषयमें लिखा कि मानना, उनमेंसे ममता उठाकर भगवान्को अपनाना और 'इन शत्रुओंका नाश नहीं हुआ है', सो भगवत्-उनका होकर रहना बड़ा ही कठिन था। अत: अबसे शरणागत और इच्छारहित साधकके सामने इनका वश मुझे अन्य किसीको भी अपना नहीं मानना है एवं नहीं चलता। जबतक मनुष्य अपने अधिकारकी पूर्ति दूसरोंसे चाहता है, तभीतक राग-द्वेष अपना बल दिखा किसीसे सम्बन्ध नहीं जोड़ना है; एकमात्र भगवान् ही मेरे हैं।' सकते हैं। जब साधक दूसरोंके अधिकारकी धर्मानुकूल (२) आपने जो यह निश्चत किया कि 'भविष्यमें पूर्ति करना ही अपना ध्येय बना लेता है, किसीसे कुछ सांसारिक झगड़ेमें नहीं पड़ना है'—यह बहुत ही अच्छा लेना नहीं चाहता और अपना कोई अधिकार भी नहीं है। अब आप जो कुछ करें, उसे ईश्वरकी सेवा और मानता, तब उसके अहंता-ममताका अभाव हो जानेपर उन्हींका काम समझकर उन्हींकी प्रसन्नताके लिये करें। राग-द्वेषादि शत्रुओंका नाश अपने-आप हो जाता है। अपने सुख-दु:खका कारण किसी भी व्यक्तिको, किसी आपने जीवनका उद्देश्य पूछा, सो मनुष्य-जीवनका भी वस्तुको, किसी भी परिस्थितिको और किसी भी उद्देश्य भगवान्को प्राप्त कर लेना ही है। उसकी अवस्थाको न मानें। ऐसा समझें कि जो कुछ अपने-प्राप्तिका उपाय शास्त्रोंमें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग आप हो रहा है, वह भगवान्की इच्छासे ही हो रहा है बताया गया है। जिस अधिकारीको जो अनुकूल पड़े, और उसीमें मेरा कल्याण भरा हुआ है। भगवान्ने जो उसके लिये वही सरल है। प्राय: अधिक मनुष्योंके लिये कुछ शरीर-इन्द्रियाँ और मन-बुद्धि तथा वस्तु आदि मुझे भक्तिप्रधान कर्मयोग ही सरल पड़ता है। उसका खुलासा

िभाग ९४ लिये ही करना चाहिये। जिस शरीरसे सेवा की जाती ऊपर लिखा ही गया है। आपने पूछा कि 'जीवनका क्रम किस प्रकारका है, उसके निर्वाहके लिये जो कुछ धर्मानुकूल प्राप्त हो, उसे उस शरीरके पालनमें लगा देना चाहिये। उसे भी होना चाहिये, जीवनमें व्यावहारिकता कितने अंशमें होनी चाहिये और संसारकी उपेक्षा किस अंशमें की जा सकती भगवानुका ही काम समझना चाहिये, क्योंकि शरीर भी है ?' इसका उत्तर यह है कि दूसरोंको धर्मानुकूल सुख तो उन्हींकी वस्तु है। शरीरके पालन-पोषणमें कभी भी पहुँचानेके लिये अर्थात् प्राप्त शक्तिका सदुपयोग करनेके उपभोगका रस नहीं लेना चाहिये। लिये व्यवहारमें पूर्ण कुशलता और तत्परता होनी चाहिये जीवनसे निराश न होकर जीवनको भगवत्-तथा अपने सुखभोगके लिये उपेक्षा होनी चाहिये। परायण बनाना चाहिये। ऐसा करनेमें मनुष्य सदैव जीवनकी सही दशा जाननेके लिये सबसे सरल स्वतन्त्र है; क्योंकि भगवान् इससे सहमत हैं। शेष प्रभुकृपा। साधन अपने जीवनका निरीक्षण करते रहना है। अपने सकाम और निष्काम भक्ति दोषोंको देखना और उनको पुन: न करनेका दृढ़ संकल्प करना, गुणोंका अभिमान न करना और दूसरोंके दोष न महोदय! आपका पत्र मिला। समाचार मालुम देखना-यही इसका उपाय है। हुए। सर्वत्र और सब वस्तुओंमें भगवान् श्रीरामका स्मरण किन ग्रन्थोंका अध्ययन करना चाहिये-पूछा, सो होना तो बडे ही सौभाग्यकी बात है। इसमें पागलपनकी गीता, रामायण और अन्य आध्यात्मिक शिक्षाकी पुस्तकें कोई बात नहीं है। ऐसी परिस्थितिमें भगवान्की परम दया जो बिना कष्टके मिल जायँ, उन्हें पढ़ना और उनमें जो समझकर साधकको अपने मनमें कृतज्ञताका भाव भरना चाहिये और भगवान्के प्रेममें निमग्न हो जाना चाहिये। अच्छी बात मिले, उसके अनुसार अपना जीवन बनानेकी चेष्टा की जाय तो पुस्तकोंके अध्ययनसे भी लाभ हो भगवान्से किसी प्रकारकी भी सांसारिक वस्तुका सकता है। पर पहले बताया हुआ साधन तो तब भी मॉॅंगना सकाम ही है। वह चाहे किसीके लिये भी क्यों करना ही पड़ेगा। न हो; क्योंकि भगवान् अन्तर्यामी हैं। वे जो कुछ करते अपने जीवनकी नौकाको संसारके प्रवाहमें छोड हैं, उसीमें साधकका परम हित भरा हुआ है। यह पूर्ण देना तो कभी भी उचित नहीं है। हाँ, भगवान्के भरोसेपर विश्वास रखनेवाला साधक किसी प्रकारकी माँग भगवान्के उसे छोड़ा जा सकता है। उनपर निर्भर होनेवालेको कभी सामने कैसे उपस्थित कर सकता है? भगवान्पर निर्भर धोखा नहीं होता। रहनेवाले भक्तका सब प्रकारका ऋण समाप्त हो जाता आपने पूछा कि 'जीवन-निर्वाहके लिये क्या किया है। उसके पितर तो कृतार्थ हो ही जाते हैं, फिर उनको जाना चाहिये?' इसका उत्तर यह है कि जिस कामसे वंशपरम्पराकी क्या जरूरत है? देशकी, समाजकी और अपने पडोसियोंकी भलाई हो, रही स्त्रीके आग्रहकी बात, तो वह यदि मोहवश जो काम उनके हितका साधन हो, जिस कामसे सबको आग्रह करती हो, तो उसका कोई महत्त्व नहीं है। अत: अपने हित-साधनमें सहयोग मिलता हो, ऐसा कोई भी भगवानुके गुण-प्रभावको जाननेवाले निष्कामी भक्तके काम, जो आपके शरीरसे हो सके, पूरा मन लगाकर द्वारा माँगना नहीं बनता; अर्थार्थी भक्त यदि माँगे तो कोई उत्साह और धैर्यके साथ निष्काम भावसे करना चाहिये दोषकी बात नहीं है। दूसरोंसे माँगनेकी अपेक्षा भगवान्से तथा उसे भगवान्की सेवा समझकर उनकी प्रसन्नताके विश्वासपूर्वक माँगना अच्छा है। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

# व्रतोत्सव-पर्व

,,

,,

,,

,,

,,

,,

१८ ,,

१९

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद-कृष्णपक्ष							
तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि			
प्रतिपदा रात्रिमें ८। ३६ बजेतक	मंगल	श्रवण दिनमें ८।१६ बजेतक	४ अगस्त	<b>कुम्भराशि</b> रात्रिमें ८।५२ बजेसे, <b>पंचकारम्भ</b> रात्रिमें ८।५२ बजे।			
द्वितीया '' ९।२४ बजेतक	बुध	धनिष्ठा ,, ९। २९ बजेतक	۷ ,,	अशून्य शयन-व्रत।			

द्वितीया 😗 ९।२४ बजेतक 🛮 बुध |धनिष्ठा ,, ९ । २९ बजेतक

तृतीया " १० ।३८ बजेतक शतभिषा ,, ११।९ बजेतक गुरु पू०भा० ,, १। १६ बजेतक शुक्र

चतुर्थी '' १२।१७ बजेतक

संख्या ७ ]

सप्तमी प्रात: ६ । १४ बजेतक

अष्टमी दिनमें ८।१ बजेतक

नवमी " ९।२७ बजेतक

पंचमी " २।११ बजेतक शिन

उ०भा० ,, ३। ३९ बजेतक

षष्ठी रात्रिशेष ४। १४ बजेतक रिव रेवती सायं ६।१६ बजेतक

सप्तमी अहोरात्र अश्वनी रात्रिमें ८ । ५१ बजेतक

१० ,, भरणी ,, ११।१९ बजेतक ११ "

कृत्तिका ,, १।३० बजेतक

मंगल

बुध १२ ,, गुरु १३ "

रोहिणी रात्रिमें ३।१५ बजेतक

मृगशिरा रात्रिशेष ४।३४ बजेतक १४ १५

दशमी 😗 १०। २७ बजेतक शुक्र एकादशी " १०।५८ बजेतक शनि आर्द्रा रात्रिशेष ५। २१बजेतक पुनर्वसु अहोरात्र रवि १६ १७

द्वादशी 🗥 १० ।५७ बजेतक त्रयोदशी 꺄 १०।२७ बजेतक सोम पुनर्वसु प्रात: ५ । ४० बजेतक चतुर्दशी *"* ९ । २७ बजेतक मंगल आश्लेषा रात्रिशेष ४।५२ बजेतक

बुध मद्या रात्रिमें ३।५७ बजेतक अमावस्या*"* ८।३ बजेतक सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद-शुक्लपक्ष

तिथि वार नक्षत्र प्०फा० रात्रिमें २।४२ बजेतक गुरु

प्रतिपदा प्रात: ६।१८ बजेतक शुक्र

उ०फा० ,, १।१३ बजेतक शनि हस्त ,, ११।३ बजेतक

रवि चित्रा ,, ९।५७ बजेतक

सोम स्वाती ,, ८।१८ बजेतक

विशाखा ,, ६। ४६ बजेतक मंगल

बुध

पंचमी '' ९।६ बजेतक

अष्टमी 🔑 २ । १२ बजेतक अनुराधा सायं ५ । २५ बजेतक नवमी 🔑 १२ । १६ बजेतक गुरु

ज्येष्ठा दिनमें ४।१९ बजेतक मूल 🔑 ३। ३५ बजेतक दशमी ,, १० ।४२ बजेतक शुक्र

एकादशी ,, ९।३१ बजेतक शनि पू०षा० <table-cell-rows> ३।१२ बजेतक

रवि

सोम

मंगल

बुध

द्वादशी 🕠 ८।४६ बजेतक

त्रयोदशी 🕠 ८।३० बजेतक

चतुर्दशी 🥠 ८।४६ बजेतक

पूर्णिमा ,, ९।३४ बजेतक

षष्ठी सायं ६ ।४० बजेतक सप्तमी दिनमें ४।२१ बजेतक

तृतीया रात्रिमें १ ।५८ बजेतक चतुर्थी 🗤 ११।३४ बजेतक

उ०षा० 🕠 ३।१७ बजेतक

धनिष्ठा सायं ४।५८ बजेतक

शतभिषा ,, ६। २२ बजेतक

श्रवण ,, ३।५२ बजेतक

२३ ,,

२१ २२ ,,

> २४ ,,

२५

२६

२७

२८

२९ ,,

30

38

,,

१ सितम्बर

दिनांक

२० अगस्त

लोलार्कषष्ठीव्रत।

१।९ बजेसे।

**भद्रा** दिनमें १२। ४७ बजेसे रात्रिमें ११। ३४ बजेतक, **वैनायकी** श्रीगणेशचतुर्थीवृत, चन्द्रदर्शन निषिद्ध।

कन्याराशि दिनमें ८।१९ बजेसे, हरितालिका ( तीज )-व्रत।

तुलाराशि दिनमें १०।४७ बजेसे, ऋषिपंचमी।

श्रीराधाष्ट्रमीव्रत, मुल सायं ५।२५ बजेसे।

रात्रिमें ९।१३ बजेसे, श्रीवामनद्वादशीव्रत।

पूर्णिमा, महालयारम्भ, प्रतिपदाश्राद्ध।

प्रदोषव्रत, महारविवारव्रत।

धनुराशि दिनमें ४।१९ बजेसे, महानन्दा नवमीव्रत।

भद्रा दिनमें ८।४६ बजेसे रात्रिमें ९।९ बजेतक।

भद्रा रात्रिमें १०।६ बजेसे, मूल दिनमें ३।३५ बजेतक।

वृषराशि प्रात: ५।५२ बजेसे, उदयव्यापिनी अष्टमी मतावलम्बी वैष्णवोंका उदयव्यापिनी रोहिणी मतावलम्बी वैष्णवोंका श्रीकृष्णजन्मव्रत, भद्रा

भद्रा दिनमें १०।१ बजेसे रात्रिमें १०।३८ बजेतक, कजली (कजरी) तीज।

मीनराशि प्रातः ६। ४४ बजेसे, संकष्टी (बहुला) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत,

भद्रा रात्रिशेष ४। १४ बजेसे, मेषराशि सायं ६। १६ बजेसे, पंचक समाप्त सायं ६।१६ बजे, हलषष्टी (ललहीछठ), श्रीचन्द्रषष्टी, चन्द्रोदय रात्रिमें १०।१४ बजे।

भद्रा दिनमें १०।२७ बजेसे रात्रिमें ९।५७ बजेतक, मुल रात्रिशेष ५।२९ बजेसे।

सिंहराशि रात्रिमें ८।४ बजेसे, श्राद्धादिकी अमावस्या, कुशोत्पाटिनी अमावस्या।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा दिनमें ४। २१ बजेसे रात्रिमें ३। १६ बजेतक, वृश्चिकराशि दिनमें

भद्रा दिनमें ९।३१ बजेतक, पद्मा एकादशीव्रत ( सबका ), मकरराशि

कुम्भराशि रात्रिशेष ४। २५ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिशेष ४। २५ बजे।

भद्रा सायं ५।१४ बजेतक, मूल रात्रिमें ८।५१ बजे।

स्वतन्त्रता-दिवस, जया एकादशीव्रत ( सबका )।

कर्कराशि रात्रिमें ११।३५ बजेसे, प्रदोषव्रत।

अमावस्या, मूल रात्रिमें ३।५७ बजेतक।

चन्द्रोदय रात्रिमें ९।१३ बजे। रक्षापंचमी, मूल दिनमें ३। ३९ बजेसे।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी-व्रत।

रात्रिमें ९।५७ बजेसे।

श्रीकृष्णजन्मव्रत, गोकुलाष्ट्रमी।

भद्रा दिनमें १०।२७ बजेतक, **मिथुनराशि** दिनमें ३।५५ बजेसे।

कृपानुभूति

कल्याण

# हमारी नैया पार लगी

हर दिन दोपहर और रात्रिमें पाठ होता था। उन बात सन् १९६८ ई० की है, जब मैं सत्रह सालका था। मेरे जीजाजीकी कपडेकी दुकान संस्कारोंसे मैं भी रामजीके प्रति स्वामी और सेवकका

भद्रावती (कर्नाटक)-में थी और मैं वहीं रहता था। नाता मानता हैं। वे मेरे आराध्य हैं। अब उस

मैसूरका दशहरा पूरे भारतमें प्रसिद्ध है, अत:

दशहरेकी छुट्टियोंमें मैं और मेरे आठ मित्र, जो आयुमें प्राय: मेरे समवयस्क ही थे, मैसूर दशहरा

देखनेको गये। तत्पश्चात् वहाँसे एक ट्रिस्ट बससे

हम सब ऊटी घूमने चले गये। पूरे दिन घूमनेके पश्चात् हम लोग शामके समय एक झीलपर गये।

वहाँ झीलमें नौका-विहार करनेका सभीका मन हो गया। वहाँ बिना नाविकके भी नाव किरायेपर

मिलती थी। हमसब बिना विचार किये नौका किरायेपर लेकर चल पडे। सिनेमामें देखते थे कि नौकाको कैसे चलाते हैं। सबमें जोश और विश्वास

था कि नौका चला लेंगे। हमलोगोंकी नासमझीसे नौका २००-२५० फीट दुरीतक चली गयी, बादमें

था. किनारेपर बसवाला जल्दी लौट आनेको चिल्ला रहा था और हम सभी 'बचाओ-बचाओ'की पुकार

लगा रहे थे। भाषाकी दुविधासे किनारेवाले हिन्दी नहीं समझ रहे थे, अत: कोई हमारी सहायताके लिये

भी नहीं आ रहा था। अँधेरा गहराता जा रहा था। सारी कोशिशोंके बाद एक भी आशाकी किरण नजर नहीं आ रही थी। सब तरफसे हारकर मैंने भगवान

श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया। *दीन दयाल बिरिद्* 

संभारी। हरह नाथ मम संकट भारी॥ बार-बार

यही चौपाई दुहराता रहा। मेरे पिताजी मुझे पाँच

गोल-गोल घूमने लगी। वहाँ पानी भी गहरा था। सभीने कोशिश की, मगर सब व्यर्थ! अँधेरा हो रहा

पकड़ ली, फिर तैरकर नाव किनारेपर ले आया।

भीगा शरीर था, कपडे बदलने—पैंट-शर्ट पहननेमें

समय लगता। इधर-उधर देखा मगर वे नहीं मिले। अब हमारे दिमागमें आया कि श्यामल

किशोरके रूपमें हमारे इष्टदेव ही आये थे। संसार-सागरसे पार उतारनेवाले वे प्रभू ही हमें झीलमें डूबनेसे बचाने और हमारी नैया पार लगाने

आये थे। जानेके समय हम नौ ही थे। उनको नहीं देखा! मुसीबत पडनेपर वे दिखे और हमारा उद्धार किया आज भी भगवानुकी उस कुपाको यादकर

प्राणसंकटकी घड़ीमें रामजीके सिवाय हमें कौन बचानेवाला था।

साँवला-सा हृष्ट-पुष्ट बैठा हुआ है। हम आश्चर्य

तभी हमने देखा कि नावमें एक और युवक

िभाग ९४

करने लगे कि नाव हमने अपने लोगोंके लिये ली थी, यह साँवला किशोर कहाँ से आ गया? मगर उसने और सोचनेका समय ही नहीं दिया और हमसे पूछा कि क्या आपलोगोंको नाव चलानी नहीं आती?

हमने इस विषयमें अपनी असमर्थता बतायी, तभी वह अपने शर्ट-पैंट उतारकर झीलके पानीमें जो बहुत ही ठंडा था, कूद पड़ा और एक हाथसे नाव

हम सभीके चेहरे खुशीसे खिल उठे। नावको वापस सौंपा और उस साँवले किशोरको धन्यवाद देनेके लिये

मुडे, वापस नौकाकी जगहपर आये, तब वहाँ वे नहीं मिले। मात्र दो मिनटके अन्तरालमें वे कहाँ चले गये!

सालकी उम्रसे ही श्रीरामचरितमानस पढ़ाते रहे हैं। हम सभी रोमांचित हो उठते हैं।—मदनलाल कोठारी Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

पढ़ो, समझो और करो (१) (२) खुदा आप-जैसा ही कोई होगा एक भारतीय भिखारीका आदर्श चरित्र आजसे लगभग ६० वर्ष पहलेकी घटना है, एक घटना सन् २००८ ई० की है। उस समय मैं एक धनी मारवाडी दम्पती हरिद्वारसे केदार-बदरीधाम जा रहे व्यवसायके कारण चेन्नईके एक प्रतिष्ठानसे जुड़ा हुआ था। कुछ आपसी विचार-विमर्शके लिये मुझे प्रतिष्ठानसे थे। डेढ़ घण्टेकी पहाड़ी यात्राके बाद उन्हें प्यास लगी और वे निकटके जलसत्रके पास गये। वहाँ हाथ-पैर बार-बार बुलावा आ रहा था, जाना भी जरूरी था। किंतु धोने तथा पानी पीनेकी व्यवस्था थी। वहाँ वे दोनों इन्हीं दिनों एक दुर्घटनाके फलस्वरूप मेरा एक पैर टूट हाथ-मुँह धोकर फिर आगे चल दिये। दो घण्टेतक गया था। बिना घोडी (एक लकड़ीका उपकरण, जिसे चलनेके बाद उस महिलाको स्मरण हुआ कि भूलसे बगलमें रखकर चला जाता है)-के मैं चल नहीं सकता उसने हीरेकी अपनी अँगूठी जलसत्रपर छोड़ दी है। तुरंत था और जाना भी जरूरी था। सो मैंने एक टैक्सी कर ली वे दोनों लौटकर वहाँ गये। उनके आनन्द और आश्चर्यका और सुबह ७ बजे मैं पत्नी और पिताके साथ चेन्नईके ठिकाना न रहा, जब उन्होंने देखा कि एक लम्बा लिये रवाना हो गया। हम यथा समय चेन्नई प्रतिष्ठानमें भिखारी चिथड़े पहने था, और एक तागेसे उस पहुँच गये। वहाँ सभी अधिकारी और बड़े साहब भी मिल अँगूठीको अपनी बाँहमें बाँधकर अपनी बाँह ऊपर करके गये। सारा काम १-२ घण्टेमें पूरा हो गया। टैक्सी साथ चिल्ला रहा था—'किसकी अँगूठी है ? किसकी अँगूठी थी ही, सो वहाँके प्रख्यात शिव मन्दिरके दर्शन किये और है ?' जब दम्पती उस भिक्षुकके पास पहुँचे और बोले करीब ३ बजे हम बेंगलूरुके लिये रवाना हो गये। रास्तेमें

पढो, समझो और करो

उन्हें लौटा दिया और कहा—'तुम बड़े बदमाश हो! जबसे तुम्हारी अँगूठी मिली, तबसे हमारा खाना-पीना कुछ नहीं हुआ। मैं तो लगातार इसी तरह चिल्लाता रहा।' मारवाड़ी महोदय अपनी अँगूठी पाकर बहुत प्रसन्न

कि 'अँगूठी मेरी है' तो भिखारीने तुरंत उस अँगूठीको

संख्या ७ ]

हुए। उन्होंने अपना तोड़ा निकाला और वे भिक्षुकको

चालीस रुपये पुरस्कार देने लगे। उस जमानेमें चालीस रुपयेमें एक तोला सोना मिल जाता था। परंतु पुरस्कारकी बात सुनते ही भिखारी क्रोधित होकर चिल्लाया— 'रुपये! किसलिये, क्या मैं चोर हूँ, यह तुम्हारी अँगूठी

झीलमें डूबनेसे बचाने और हमारी नैया पार लगाने

आये थे। स्वर्ण-मन्दिर १५ टन सोनेसे बना है। मन्दिरकी

विशालता अपना परिचय स्वयं दे रही थी, महालक्ष्मीकी मूर्ति अत्यन्त सुन्दर एवं मनोहारी थी। मन्दिर देखकर हम ७.३० बजे बेंगलूरुके लिये रवाना हो गये। अनुमानके अनुसार लगभग १२ बजे बेंगलूरु पहुँचना था। किंतु हमारा टैक्सी ड्राइवर लोभी प्रवृत्तिका होनेकी वजहसे सेट

वेल्लोरमें भगवती महालक्ष्मीका स्वर्ण-मन्दिर देखनेहेतु

चले गये। वहाँ दर्शनार्थियोंकी भारी भीड थी। मन्दिर

परिसर भी बहुत विशाल था। जानकारी करनेसे पता चला

कि श्यामल किशोरके रूपमें हमारे इष्टदेव ही आये थे। संसार-सागरसे पार उतारनेवाले वे प्रभु ही हमें

है और मैंने इसे तुम्हें दे दिया। उसके लिये मैं रुपये क्यों लूँ?' ऐसा कहकर वह चला गया। धनी सौदागर किये पेट्रोल पंपपर डीजल बेच रहा था। यद्यपि रास्ता साफ था। किंतु जब बेंगलूरु ३० किलोमीटर रह गया, तब आश्चर्यचिकत हो वहाँ खड़ा रहा। यह है, एक भारतीय अचानक गाड़ीके नीचे भागमें टक्कर लगी और डीजलकी

भिखारीका आदर्श चरित्र।-शिशिर कुमार सेन

िभाग ९४ टंकी फूट गयी, सारा डीजल बह गया, गाड़ी खड़ी हो जैसा ही कोई होगा।'—विनोद पुरोहित गयी। इससे हम भी चिन्तामें पड़ गये कि अब क्या होगा! (3) तब ड्राइवर बोला—'साहब! मुझे पाँच सौ रुपये दे दो, मैं श्वेतकुष्ठनाशक गंगाजल सुधरवानेकी व्यवस्था करता हूँ'। कोई अन्य उपाय न श्वेतकुष्ठ एक त्वचा रोग है, जो आसानीसे नहीं जाता। इस सम्बन्धमें आयुर्वेदका मत है कि खदिरारिष्टके साथ देखकर मैंने उसे पाँच सौ रुपये दे दिये, वह रुपये लेकर जो गया, फिर आया ही नहीं। अब हम घबरा गये, रात जो नियमित गंगाजलका कुशल चिकित्सक सेवन करवाता गहराती जा रही थी, अँधेरा बढ़ रहा था। यद्यपि गाड़ी है। वो इस हठी रोगको नष्ट करनेमें समर्थ होता है। मुख्य सड़कपर ही थी और बगलसे कई बसें, कारें, टैक्सियाँ खदिरारिष्ट-चिकित्सा—'खदिर भुः कुष्ठघ्ना-आ-जा रही थीं। किंतु कोई भी रुकनेको तैयार नहीं। ऐसी नाम्' अर्थात् खदिर कुष्ठघ्न है। खदिरारिष्ट कुष्ठादि हालतमें सिवाय भगवान्के और कौन सहाय हो सकता चर्मरोगोंके लिये अद्भुत औषधि है। सुपरीक्षित भी है। था; सो 'दीन दयाल बिरिदु संभारी। हरहु नाथ मम मात्रा एवं अनुपान—डेढ्से ढाई तोला बराबर जल संकट भारी 'का जाप करने लगे। इधर मेरे पिताजी घोड़ी मिलाकर भोजनान्तर दें। प्रातः स्नान करनेके पश्चात् बगलमें लगाकर सड़कपर खड़े हो गये कि कोई तो रुके। एक गिलास गंगाजल और सायंकाल एक गिलास किंतु कोई नहीं रुका। तभी एक अनहोनी-सी घटना हुई, गंगाजल लें। इस चिकित्सा-विधानसे कुष्ठ समूल नष्ट अचानक एक टैक्सी हमसे करीब पन्द्रह-बीस फुट दूर हो जाता है। जाकर खड़ी हुई। तब पिताजी उसके पास दौड़े-दौड़े गंगाजल-चिकित्सा—दो तोला नीमकी ताजी गये। उसमें एक सज्जन बैठे थे। उन्होंने पूछा 'क्या बात छालको कूटकर पावभर जल (गंगाजल)-में डालकर मन्द आँचपर पकायें, एक छटाँक जल शेष रह जाय तो है ?' तब पिताजीने सारे हालात बयान किये। तब उन्होंने पूछा कि 'कितने जन हो ?' पिताजीने कहा कि 'मैं, मेरा छानकर पी लें। इसी प्रकार सायंकाल भी करें। बेटा एवं बहु—हम तीन जन हैं।' तो उन्होंने तत्काल दीर्घकालतक इसका सेवन करें। सेवनकालमें नमक, आनेको कहा। हम भी जल्दी-जल्दी उनकी टैक्सीमें पीछे लाल मिर्च, लहसुन, प्याज आदि उष्ण पदार्थींका परहेज बैठ गये और टैक्सी चल पडी। थोडी देर बाद उन्होंने करें। यह सिद्धयोग बहुत बारका अनुभूत है। आशातीत बताया कि 'यह जगह अत्यन्त खतरनाक एवं खराब है। लाभ होता है तथा कुष्ठ समूल नष्ट हो जाता है। यहाँ लूट-खसोट, हत्या आदिके मामले होते ही रहते हैं, आरोग्यवर्धिनी वटी और गंगाजल—वैद्य लोग इसलिये यहाँ कोई रुकता नहीं। मैंने भी गाड़ी बीस फुट दूर आरोग्यवर्धिनी वटी १-२ गोली प्रात:-सायं लेनेका योग इसीलिये खड़ी की थी। आपके साथ कोई दुर्घटना नहीं बताते हैं। जहाँतक मेरे अनुभवमें आया है, गंगाजलके हुई, ये बड़े भाग्यकी बात है।' साथ यह वटी ली जाय तो २०० फीसदी लाभकर बेंगलूरु नजदीक आनेपर हमने उनसे कहा कि 'आप शरीरको निरोगी बनाती है। यह अनूठा चमत्कार मैंने हमें यहीं उतार दीजिये, अब हम चले जायँगे'। किंतु स्वयं देखा है। उन्होंने इनकार कर दिया और कहा मैं आपको आपके घर गंगाजलका चमत्कारी प्रभाव—बाबची इस हठी रोगकी प्रसिद्ध दवा है। मेरे पूज्य गुरुने जो छोड़कर ही जाऊँगा और हमें उन्होंने हमारे घर उल्सूर ही चिकित्सा-विधान बतलाया है, उसे लोकहितके लिये छोडा। तब पिताजीने उनको धन्यवाद देते हुए नाम पूछा। तो उन्होंने जो नाम बताया, उससे पता चला कि वे सज्जन यहाँ प्रस्तृत कर रहा हूँ। उन्होंने अपने चिकित्सा-विधानमें बताया है कि पहले दिन बाबचीका एक दाना एक मुसलिम थे। तब पिताजीने अत्यन्त कृतज्ञतापूर्वक कहा कि 'हमने खुदाको तो नहीं देखा, पर खुदा आप-दूसरे दिन दो दाना एक गिलास गंगाजलसे लें अर्थात्

संख्या ७] पढ़ो, समझ	ग्रे और करो ४९			
****************************	<u>*******************************</u>			
१-१ दाना प्रात:-सायं लें। ऐसे १०० दिनतक लें। पुन:	लगाऊँ।' साबुन लगाकर स्नान करनेकी मेरी सदैवसे			
वापस लौटकर १ दानेपर ही आ जायँ। इस प्रकार	ही आदत है, अत: मैंने सारे शरीरमें साबुन लगाया			
नियमबद्ध चिकित्सा करनेसे यह भयंकर हठी रोग समूल	और अपना एक हाथ छोटे भाईके हाथमें पकड़ाकर			
नष्ट हो जाता है।—शंकरलाल गौड़	गोते लगाने लगा। दुर्भाग्यसे मेरा हाथ मेरे भाईके			
(8)	हाथमेंसे फिसल गया, क्योंकि उसमें साबुन लगा था;			
भगवान्की अन्तर्वाणी	और साथ ही मेरी अँगुलीमें-से चार मासे सोनेकी			
घटना आजसे लगभग साठ वर्ष पहलेकी है। उस	अँगूठी निकलकर गंगाजीकी भेंट चढ़ गयी। मैं चिन्तातुर			
समय मैं केन्द्रीय सरकारके एक कार्यालयमें सहायक	हो उठा और शर्मके मारे कॉॅंपने लगा। तुरंत ही			
क्लर्कथा। एक दिन अकस्मात् एक पूर्वपरिचित ठेकेदार	भाईने जाकर पिताजीसे कहा और वे आ गये। उन्होंने			
मेरे पास आये और मुझे सात रुपये देने लगे। मेरे पूछनेपर	आते ही कहा—मैंने पहले ही मना किया था कि			
उन्होंने उत्तर दिया कि वे यह भेंट मुझे मिठाईके लिये	गंगाजी या अन्य पवित्र निदयोंमें साबुन लगाकर नहीं			
दे रहे थे; क्योंकि उनके कामका एक बिल मेरे द्वारा	नहाना चाहिये; परंतु तुम नहीं माने और अँगूठी गवाँ			
एकाउन्टेन्टतक पहुँच गया था। उसी सहायताके उपलक्षमें	बैठे। मैंने उनसे प्रार्थना की कि 'आप क्रोध न करें;			
वे सात रुपये मुझे भेंट देनेके लिये मेरे पास आये थे।	मुझे पूर्ण विश्वास है कि अँगूठी मिलकर रहेगी।			
मैंने उनसे कहा कि 'यह तो मेरा कर्तव्य था, आपको	यदि आप जानते हों तो किसी गोताखोरको बुला			
धन्यवाद; मैं रुपये लेनेका अधिकारी न होते हुए भी,	दीजिये।' पिताजी तुरंत घटवालियेके पास गये और			
रुपये स्वीकार न कर सकनेके लिये क्षमा चाहता हूँ।'	उससे कहा कि किसी गोताखोरको बुला दो, अँगूठी			
परंतु वे नहीं माने और हठ करने लगे। इसी समय मेरे	मिलनेपर हम प्रसन्न कर देंगे। गोताखोर आया और			
सहयोगी क्लर्क भी वहाँ आ गये, जो आयुमें मेरे	उसने वह स्थान बतलानेको कहा, जहाँपर मैं स्नान			
पिताजीसे भी बड़े थे और उनका मैं हृदयसे बड़ा आदर	कर रहा था; मैंने वह स्थान बता दिया और उसने			
करता था। उनके पूछनेपर मैंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया।	लगभग डेढ़ घंटेके परिश्रमके बाद वह अँगूठी ढूँढ़			
इसपर मुझे डाँटकर कहा कि 'तुम मेरे कहनेसे रुपये ले	निकाली। उसने दो रुपये माँगे, जो कि उसे दे दिये			
लो, मैंने भी तो ले लिये हैं; तुम व्यर्थ हठ करते हो।	गये; और तुरन्त ही पाँच रुपयेका प्रसाद, जो			
इनको लेनेमें कोई पाप नहीं है; क्योंकि ये तुमने पहलेसे	मैंने अँगूठी खोजते समय मनमें धारणा की थी,			
तो तय किये नहीं थे। अत: इन्हें ले ही लो।' उनका	बाँट दिया।			
कहा टालना मैंने उचित नहीं समझा और रुपये ले लिये;	उसी समय मेरे भीतर अन्तर्वाणी हुई कि 'ये सात			
परंतु मेरी अन्तरात्मा मुझे फटकार रही थी कि यह तूने	रुपये जिस प्रकार आये, उसी प्रकार चले गये, उनका			
अच्छा नहीं किया।	लोभ मत कर।' मैंने भगवान्का कोटिश: धन्यवाद किया			
संयोगसे दो ही दिन बाद 'शरत्पूर्णिमा'के अवसरपर	कि उन्होंने मेरी आँखें खोल दीं और मुझे जीवनमें			
मुझे सपरिवार गंगाजी जाना पड़ा। वहाँ पहुँचनेपर	कुपथके गर्तकी ओर अग्रसर होनेसे सदैवके लिये			
प्रथम स्नानार्थ मैं अपने लघु भ्राताको साथ लेकर	बचा दिया।			
गंगातटपर पहुँचा तो देखा, जलका प्रवाह तेज था	यह मेरे जीवनका प्रथम तथा अन्तिम अवसर			
तथा जल भी गहरा था। मुझे अकेले स्नान करनेमें	था, जब मैंने अपनी अन्तरात्माकी आवाज दबाकर			
भय प्रतीत हुआ; अतः मैंने अपने छोटे भाईसे कहा	इस प्रकारकी भेंट स्वीकार की हो।			
कि 'तुम मेरा एक हाथ पकड़ लो और मैं गोते	—गोकलचन्द गुप्त			
<del></del>	<b>&gt;+</b>			

करत-करत अभ्यासके जड़मित होत सुजान

ही नहीं लगा।

बालक वरदराजका नाम तो कुछ और था; परंतु

मन्दबुद्धि होनेके कारण इनके सहपाठी इन्हें बरधराज

(बैलोंका राजा) कहा करते थे। इनकी स्मरणशक्ति हृदयसे लग जाता है, तब उसके देवता उसपर अवश्य

इतनी दुर्बल थी कि जितने दिनोंमें एक बडे घडेभर सत्त

खाकर ये समाप्त कर पाते थे, उतने दिनोंमें केवल एक

सुत्र इनका कण्ठस्थ होता था। जब ये पाँच वर्षके थे,

तभी पढ़नेके लिये गुरुजीके पास आये थे। दस वर्ष बीत

जानेपर भी जब ये मूर्ख ही बने रहे, तब अन्तमें एक

दिन गुरुजीने निराश होकर कहा—'बेटा वरदराज! मैंने

पूरा प्रयत्न कर लिया; परंतु तुम्हारे भाग्यमें विद्या नहीं जान पड़ती। तुम पढ़ाई छोड़कर घर जाओ और कोई

दूसरा काम करो।' ब्राह्मणके बालकको विद्या नहीं आयेगी, यह बात

उन दिनों साधारण नहीं थी। यह तो ब्राह्मणत्वसे गिर जाने-जैसी बात थी। गुरुदेवकी बातसे वरदराजको इतना दु:ख हुआ कि उन्होंने विद्याहीन जीवनसे मर जाना श्रेष्ठ

समझा। कुएँमें कूदकर प्राण-त्याग करनेके विचारसे वे एक कुएँके पास गये। उन्होंने देखा कि कुएँके ऊपरका

जो पत्थर है, उसपर जल खींचनेकी रस्सीकी रगड़के चिह्न बन गये हैं। वरदराजने सोचा—'जब इतने कठोर

पत्थरपर कोमल रस्सीके बार-बार रगडनेसे चिह्न बन जाता है, तब परिश्रम करनेसे क्या मुझे विद्या नहीं

आयेगी?' वे आत्महत्या करनेका विचार छोडकर गुरुदेवके पास लौट आये। कुछ दिन और अपने पास रखकर शिक्षा देनेके लिये गुरुदेवसे उन्होंने प्रार्थना की।

वरदराजने अब मन लगाकर पढना प्रारम्भ किया। उनकी लगन इतनी तीव्र थी कि अपने शरीरतकका भी

उन्हें ध्यान नहीं रहा। सायंकाल जब वे भोजन करने बैठे, तब भोजन करते समय भी उनकी दृष्टि व्याकरणके

पन्नेपर ही थी और वे उसीको स्मरण करनेका प्रयत्न कर रहे थे। उनका हाथ थालीके बदले पास पडी राखपर पड़ गया और उसी राखको भोजन समझकर वे उठा-

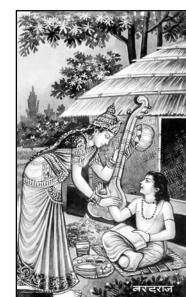
उठाकर खाने लगे। पढ़नेमें उनका इतना ध्यान था कि

जब कोई किसी भी काममें पूरी एकाग्रतासे, सच्चे

प्रसन्न हो जाते हैं। उस कार्यमें अवश्य उसे सफलता

मिल जाती है। वरदराजकी पढ़नेमें इतनी एकाग्रता

देखकर विद्याकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती प्रसन्न हो



गर्यों। उन्होंने प्रकट होकर दर्शन दिया। उनके आशीर्वादसे वरदराज व्याकरण तथा सभी शास्त्रोंके महान् विद्वान् हो

गये। पाणिनीय व्याकरण पढ़नेमें बहुत श्रम होता है, वरदराजको इसका अनुभव था। उन्होंने आरम्भमें विद्यार्थियोंको व्याकरण पढनेमें सरलता हो, इस विचारसे

'लघुसिद्धान्तकौमुदी' की रचना की। पाणिनीय व्याकरणका संक्षिप्त सारांश इस ग्रन्थमें है। वरदराजकी घटनासे संस्कृतमें एक लोकोक्ति प्रचलित

हो गयी, जिसकी हिन्दीमें भी पद्यके रूपमें बहुत प्रसिद्धि

है। जीवनमें उन्नति चाहनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके लिये यह लोकोक्ति स्मरण रखनेयोग्य है।

करत करत अभ्यासके जड़मित होत सुजान।

मुम्बालें अगेन्द्रनाज्या इंडा के त्या अलग्ह अलग्ह अलग्ह इंस्कृड अलग्ह इंस्कृड कुल a प्राप्त अलग्ह स्थाप अलग्ह अलग्ह स्थाप अलगह स

#### गीताप्रेससे प्रकाशित १७ महापराण—अब उपलब्ध

	THE STATE OF THE S								
कोड	पुस्तक-नाम	मू० ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹				
2223	<b>श्रीशिवमहापुराण</b> (प्रथम खण्ड) सटीक	३२५	1362	<b>श्रीअग्निपुराण</b> —सम्पूर्ण (श्लोकाङ्क्रसहित) केवल हिन्दी	२६०				
2224	श्रीशिवमहापुराण (द्वितीय खण्ड) "	३२५	44	संक्षिप्त पद्मपुराण "	२८०				
1897	श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण [मतान्तरसे] (प्रथम खण्ड)••	२५०	1183	संक्षिप्त श्रीनारदपुराण "	२२०				
1898	<mark>श्रीमदेवीभागवतमहापुराण</mark> ,,(द्वितीय खण्ड) <b>''</b>	२५०	279	संक्षिप्त श्रीस्कन्दपुराण "	४२५				
26,27	श्रीमद्भागवतमहापुराण (दो खण्डोंमें) "	£00	1111	संक्षिप्त ब्रह्मपुराण "	१५०				
557	श्रीमत्स्यमहापुराण "	300	539	संक्षिप्त श्रीमार्कण्डेयपुराण "	१००				
48	श्रीविष्णुपुराण "	१५०	1189	संक्षिप्त श्रीगरुडपुराण "	200				
1432	श्रीवामनपुराण "	१५०	1361	संक्षिप्त श्रीवराहपुराण "	१२०				
1131	श्रीकूर्मपुराण "	१५०	631	संक्षिप्त श्रीब्रह्मवैवर्तपुराण "	२५०				
1985	श्रीलिङ्गमहापुराण "	२५०	584	संक्षिप्त श्रीभविष्यपुराण "	२००				

#### श्रीकृष्णजन्माष्टमी एवं श्रीराधाष्टमीपर उपयोगी प्रमुख प्रकाशन

( श्रीकृष्णजन्माष्टमी ११ अगस्त मंगलवारको एवं श्रीराधाष्टमी २६ अगस्त बुधवारको है। )

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
571	श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन	200	343	मधुर	30	870	गोपाल [चित्रकथा]	१५
49	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	१००	526	महाभाव-कल्लोलिनी	१०	871	मोहन ,,	२०
50	पदरत्नाकर	११०	869	कन्हैया [चित्रकथा]	१५	872	श्रीकृष्ण ,,	१५
						<del>'                                    </del>		

सहस्त्रनामस्तोत्रसंग्रह (कोड 1594)

प्रस्तुत पुस्तकमें एक साथ श्रीगणपित, श्रीविष्णु, श्रीशिव, श्रीदुर्गा, श्रीसूर्य, श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीलक्ष्मी-नृसिंह, श्रीगोपाल, श्रीराधाकृष्ण, श्रीहनुमान्, श्रीगायत्री, श्रीगङ्गा, श्रीयमुना, श्रीलक्ष्मी, श्रीअन्नपूर्णा, श्रीसीता, श्रीराधिका, श्रीलिलता, श्रीभवानी, श्रीदत्तात्रेय, श्रीवक्रतुण्ड-महागणपित—२२ देवी-देवताओंके सहस्रनामावलीसिहत सहस्रनामस्तोत्र प्रकाशित किये गये हैं। परमात्मप्रभुकी प्रसन्नताके निमित्त पूजा-अर्चनाके लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹१३०

सहस्रनामस्तोत्र ( नामावलीसहित ) अलगसे पॉकेट साइजमें भी								
	सहस्र गमस्तात्र ( गमावरगसाहत ) अरगमस पावाट साइवाम मा							
कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
1599	श्रीशिवसहस्त्रनामस्तोत्रम्	१०	1664	श्रीगोपालसहस्त्रनामस्तोत्रम्	१०	1706	श्रीविष्णुसहस्त्रनामस्तोत्रम्	१०
1600	श्रीगणेशसहस्त्रनामस्तोत्रम्	१०	1665	श्रीसूर्यसहस्त्रनामस्तोत्रम्	१०	1707	श्रीलक्ष्मीसहस्त्रनामस्तोत्रम्	१०
1601	श्रीहनुमत्सहस्त्रनामस्तोत्रम्	१०	1704	श्रीसीतासहस्त्रनामस्तोत्रम्	१०	1708	श्रीराधिकासहस्त्रनामस्तोत्रम्	१०
1663	श्रीगायत्रीसहस्त्रनामस्तोत्रम्	۷	1705	श्रीरामसहस्त्रनामस्तोत्रम्	१०	1709	श्रीगंगासहस्त्रनामस्तोत्रम्	۷

शतनामस्तोत्रसंग्रह (कोड 1850) पुस्तकाकार—प्रस्तुत पुस्तकमें गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण, दुर्गा आदि विभिन्न देवों और देवियोंके शतनामस्तोत्रों एवं शतनामाविलयोंको प्रकाशित किया गया है। भक्तगण इसके माध्यमसे उपासना एवं पूजा करके यथोचित लाभ प्राप्त कर सकते हैं। मूल्य ₹ ३५



LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2020-2022

## गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कर्मकाण्डकी प्रमुख पुस्तकें

### [ २ सितम्बर बुधवारसे पितृपक्ष ( महालया ) आरम्भ हो रहा है ]

नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश, सजिल्द (कोड 592)—इस पुस्तकमें प्रात:कालीन भगवत्स्मरणसे लेकर स्नान. ध्यान, संध्या, जप, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देव-पुजन, देव-स्तुति, विशिष्ट पुजन-पद्धति, पञ्चदेव-पुजन, पार्थिव-पुजन, शालग्राम-महालक्ष्मी-पुजनकी विधि है। मुल्य ₹ ७० (गुजराती, तेलुग एवं नेपाली भाषामें भी उपलब्ध)।

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश (कोड 1593) ग्रन्थाकार—इस ग्रन्थमें मुल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। मुल्य ₹ १४५

जीवच्छाद्धपद्धति (कोड 1895) — प्रस्तुत पुस्तकमें जीवित श्राद्धकी शास्त्रीय व्यवस्था दी गयी है, जिसके माध्यमसे व्यक्ति अपने जीवित रहते ही मरणोत्तर क्रियाका सही सम्पादन करके कर्म-बन्धनसे मृक्त हो सके। मृल्य ₹ ७०

गया-श्राद्ध-पद्धति (कोड 1809)—शास्त्रोंमें पितरोंके निमित्त गया-यात्रा और गया-श्राद्धकी विशेष महिमा बतायी गयी है। आश्विन मासमें गया-यात्राकी परम्परा है। प्रस्तुत पुस्तकमें गया-माहात्म्य, यात्राकी प्रक्रिया, श्राद्धका महत्त्व तथा श्राद्धकी प्रक्रियाको सांगोपांग ढंगसे प्रस्तृत किया गया है। मूल्य ₹ ३५

गरुडपुराण-सारोद्धार (कोड 1416)—श्राद्ध और प्रेतकार्यके अवसरोंपर विशेषरूपसे इसके श्रवणका विधान है। यह कर्मकाण्डी ब्राह्मणों एवं सर्व सामान्यके लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। मल्य ₹ ४०

त्रिपिण्डी श्राद्ध (कोड 1928)—अपने कुल या अपनेसे सम्बद्ध अन्य कुलमें उत्पन्न किसी जीवके प्रेतयोनि प्राप्त होनेपर उसके द्वारा संतानप्राप्तिमें बाधा या अन्यान्य अनिष्टोंकी निवृत्तिके लिये किया जानेवाला श्राद्ध त्रिपिण्डी श्राद्ध है। इस पुस्तकमें त्रिपिण्डी श्राद्धका सविधि वर्णन किया गया है। मुल्य ₹ २०

सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण बलिवैश्वदेव-विधि (कोड 210) पुस्तकाकार—नित्य सन्ध्या-उपासना एवं तर्पण बलिवैश्वदेवविधिका मन्त्रानुवादके साथ सुन्दर प्रकाशन। मूल्य ₹८ [तेलगुमें भी उपलब्ध]।

- booksales@gitapress.org थोक पस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
- gitapress.org सुची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कुरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर, 273005 book.gitapress.org gitapressbookshop.in

कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ सकते हैं।